277. प्रश्न—जड़ तो प्रत्यक्ष है; परन्तु चेतन बिना जड़ के प्रत्यक्ष नहीं होता, सो क्यों?

उत्तर—जड़ किसके प्रत्यक्ष हैं? चेतन ही के तो। चेतन न हो तो जड़ को कौन प्रत्यक्ष करे? तुम स्वयं चेतन हो। तुम्हीं तो सबको जानते हो? चेतन इन्द्रियों का विषय तो है नहीं, फिर दूसरे चेतन को तुम किस साधन से जानोगे?

संसार के सभी ज्ञान सापेक्ष हैं। तुम सूर्य के प्रकाश में पृथ्वी और जल को देखते हो। वस्तुओं, पेड़ के पत्तों तथा घास-फूसों को हिलते देख एवं त्वचा में स्पर्श पाकर वायु का अनुभव करते हो। सबको प्रकाशित करनेवाला अग्नि या सूर्य है यह समझकर उसका ज्ञान करते हो। इसी प्रकार किसी शरीर में ज्ञानयुत क्रिया देखकर उसमें चेतन है, यह ज्ञान करते हो।

बिजली बादल, तार और बल्ब से सर्वथा पृथक है; परन्तु बिना उनके प्रकट नहीं होती। इसी प्रकार चेतन मन, इन्द्रिय तथा देह से सर्वथा पृथक है; परन्तु व्यवहार में बिना उनके प्रकट नहीं होता।

278. प्रश्न—अन्त:करण में भरी वासनाएं कैसे निकलें?

उत्तर—विवेकी पुरुषों की सेवा, उपासना, विवेक, वैराग्य और ज्ञान से।

279. प्रश्न—मौत का भय कैसे छूटे?

उत्तर—अपने आपको देह से पृथक अजर, अमर, शुद्ध चेतन समझकर।

280. प्रश्न—कई महात्माओं का कहना है कि जीव शरीर छोड़कर तुरन्त चला जाता है और कर्मानुसार पुनर्देह धारण करता है और कई लोग कहते हैं कि मरे हुए व्यक्ति का दशगात्र होता है; अतएव जीव 12-13 दिन घर में रहकर तत्पश्चात जाता है; सत्य क्या मानें?

उत्तर—निश्चित ही जीव शरीर छोड़कर तुरन्त चला जाता है और देर-सबेर कर्मानुसार योनि में प्रवेश करता है।

दशगात्र की बात तो केवल अंधविश्वास है। हिन्दुओं के मृतकों के जीव 12-13 दिन दशगात्र के नाते रुके रहते हैं, तो मुसलमानों, इसाइयों, पारसियों आदि के जीवों की क्या दशा होती है? अतएव यह केवल कल्पित है कि दशगात्र के नाते जीव रुके रहते हैं।

281. प्रश्न—आप कबीर साहेब के नाम में श्री नहीं लगाते, बल्कि बाद के संतों के नामों में श्री लगाते हैं, ऐसा क्यों?

उत्तर—ईश्वर-ब्रह्म के नाम में कोई श्री नहीं लगाता—जैसे श्री ईश्वर, श्री ब्रह्म आदि, परन्तु राम, कृष्णादि के नाम में लोग श्री लगाते हैं—जैसे श्री राम, श्री कृष्णादि।

मेरी दृष्टि में सद्गुरु कबीर सर्वोच्च हैं; इसलिए उनके नाम में श्री लगाने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती; प्रत्युत पीछे के संतों के नाम में श्री लगा देता हूं, यथा श्री रामरहस साहेब, श्री पूरण साहेब आदि। फिर भी सद्गुरु कबीर के नाम में श्री सर्वथा नहीं लगाता हूं या नहीं लगाने का नियम निकालता हूं—ऐसी बात नहीं है।

अनेक जगह मेरे द्वारा भी कबीर साहेब के नाम में श्री लगा है और लगता भी रहेगा।

ध्यान रहे, मैं सद्गुरु कबीर को ईश्वर-ब्रह्म के स्थान पर जगत का रचयिता या प्रेरक आदि नहीं मानता, अन्यथा ऊपर के कथन से कोई मिथ्या भ्रम कर ले। सद्गुरु कबीर एक महामानव एवं महान संत थे। यह भी समझ लो कि मानव से बढ़कर कोई है भी नहीं—न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् (महाभारत, शांतिपर्व 299/20)। जो मनुष्य को जाना वह ब्रह्म को जाना—यो मानुष वेद स वेद ब्रह्म।

सार यही हुआ कि मैं सद्गुरु कबीर को इतनी ऊंचाई पर मानता हूं जिससे अधिक ऊंचा कुछ नहीं हो सकता। अतएव उनके नाम में श्री जैसा साधारण विशेषण कोई बड़े महत्त्व का नहीं समझता, फिर भी श्री वर्जित नहीं है।

282. प्रश्न—मनुष्य शरीर पुण्य संचित से मिलता है, तो वह कौन-सी देह है जहां से पुण्य संचित करके आज मानव की संख्या बढ़ रही है?

उत्तर—मानव शरीर ही कर्म की भूमिका है। यहीं पुण्यों या पाप-कर्मों का संचय होता है। मानव शरीर में तो अन्य खानियों से ऐसे भी जीव आते हैं जिनके वहां के कर्मफल भोग पूरे हो गये हैं; अतः स्वाभाविक अपनी कर्मभूमि मनुष्य देह में आ जाते हैं।

283. प्रश्न—वर्षा आदि में फसल में असंख्य जीव आ जाते हैं, वे कहां से आते हैं?

उत्तर—जैसे वर्षा में बहुत-सा पानी बरसता है, अन्य महीने में सूख जाता है और पता नहीं चलता कि कहां चला गया; परन्तु वह नष्ट नहीं होता। वातावरण में रहता है। इसी प्रकार जीव न तो नष्ट होते हैं न तो नये बनते हैं। वे नित्य संसार में रहते हैं, संयोग पाकर दृश्य रूप में तथा वियोग पाकर अदृश्य रूप में। फिर पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों पर सभी ऋतुएं हर समय बनी

रहती हैं। जीव सर्वत्र गमनागमन किया करते हैं और शरीर धरते-छोड़ते रहते हैं।

284. प्रश्न—फसल में कीटनाशक दवाई का छिड़काव करने से हिंसा है कि नहीं?

उत्तर—किसान जीव-हत्या का लक्ष्य नहीं रखता। वह केवल अपनी फसल की रक्षा चाहता है और करता है। फसल में असंख्य जीव पलते और मरते हैं। किसान न उन्हें पालना चाहता है न मारना।

जहां तक सम्भव हो, कीट पैदा होने के पहले फसल में दवा का छिड़काव कर देना चाहिए। फिर शक्ति चले तक ही बचाया जा सकता है। जो शक्ति के बाहर है उसमें असमर्थता है। फसल की रक्षा करना किसान का कर्तव्य है। किसान के मन में हिंसा करने की भावना नहीं है, तो वह निर्दोष है।

जीव दया पालो सबै, निज शक्ति सामर्थ।
मनसाय क्रिया को फल लहै, बिन मनसाय न अर्थ॥

(विशाल वचनामृत)

वैज्ञानिक इस तथ्य की भी खोज कर रहे हैं कि कीटनाशक दवाई फसल में न छोड़ना पड़े और फसल सुरक्षित रहे। क्योंकि कीटनाशक दवाई अन्न, सब्जी तथा फल को विषाक्त बनाती है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकर है।

* * *

285. प्रश्न—लोग स्त्री को त्यागकर योग साधना करते हैं, यह कहां तक उचित है?

उत्तर—हद तक उचित है। जो योग चाहेगा उसे भोग छोड़ना ही पड़ेगा। मानव जीवन का परम उद्देश्य शांति की प्राप्ति भोग से नहीं, योग से ही सम्भव है। स्त्री हो या पुरुष, जो कल्याण चाहेगा उसे भोग से हटकर योग साधना ही पड़ेगा।

286. प्रश्न—यदि उपरोक्त तथ्य सत्य है तो मनुष्य को अपनी स्त्री के जीवन को समाप्त करने का क्या अधिकार है?

उत्तर—यदि कोई अपनी स्त्री की हत्या करके योग करता है तो यह गलत है, महापाप है। हत्या करना ही जीवन समाप्त करना है। स्त्री का सम्बन्ध छोड़कर विरक्त हो जाना स्त्री का जीवन समाप्त करना नहीं है।

पुरुष स्त्री में आसक्त होकर उसका अहित करता है। कामी पुरुष स्त्री को भी कामाग्नि में झोंककर उसे पूरा जीवन रोगी, शोकी तथा पूरी भंगिनी बनने को

विवश कर देता है। किस कामी पुरुष द्वारा स्त्री का कल्याण हुआ है?

कामी देहासक्त होता है और देहासक्त व्यक्ति सीमित शारीरिक जीवन को सब कुछ मानकर अपने और दूसरे (स्त्री) को अनन्त आत्मिक जीवन से वंचित रखता है, परन्तु जो काम-भोग को त्यागकर शुद्ध ब्रह्मचर्य एवं योग का जीवन व्यतीत करता है वह स्वयं देहाभिमान से ऊपर उठकर अनन्त आत्मिक जीवन में विहार करता है। यदि वह पूर्व विवाहित है तो अपनी पत्नी को भी अनन्त आत्मिक जीवन पाने का अधिकारी बना देता है, यदि वह प्रयत्न करे तो। अतएव त्यागी पुरुष स्त्री के जीवन को समाप्त नहीं करता, किन्तु उसके जीवन को सीमितता से अनंतता की ओर अग्रसर करता है। नीम कीटवत जो विषयों से अलग होना ही दुख मानता है, वह भूला है।

प्रश्न होता है कि यदि सब योगी हो जायें तो सृष्टि कैसे चलेगी? सो भैया, इसकी चिंता करने की आवश्यकता नहीं। सृष्टि से सरकार परेशान है। आजकल तो जहां तक सम्भव है भोगी की अपेक्षा योगी एवं त्यागी बनना ही अच्छा है। फिर त्यागी तो विरले होते हैं, भोगियों से ही तो संसार भरा है।

287. प्रश्न—यदि श्रद्धा से भक्ति आती है तो श्रद्धा का उद्‌गम-स्रोत क्या है?

उत्तर—पवित्र हृदय।

288. प्रश्न—कबीर साहेब का आदेश क्या है?

उत्तर—''सकलो दुर्मति दूर करु, अच्छा जनम बनाव।''

289. प्रश्न—पारख सिद्धान्त पहले से था कि कबीर साहेब से ही निकला?

उत्तर—वर्तमान में उसके सम्यक अन्वेषक कबीर साहेब ही हैं; परन्तु उसका सत्य तत्त्व नित्य है तथा अन्वेषक भी सदैव होते रहते हैं।

290. प्रश्न—भवयान और चौका-आरती क्या है?

उत्तर—वर्तमान युग के परम पारखी, परम वैराग्यवान एवं जीवन्मुक्त पुरुष सद्‌गुरु विशाल साहेब द्वारा रचित चार ग्रन्थों में से 'भवयान' प्रथम बृहत और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

श्री विशाल साहेब रचित चार ग्रन्थ हैं—भवयान, मुक्तिद्वार, सत्यनिष्ठा और नवनियम। चारों मिलाकर विशालवचनामृत के नाम से जाना जाता है और चारों की श्री प्रेम साहेब द्वारा रचित विस्तृत टीकाएं हैं। इन पंक्तियों के लेखक की भी इन पर टीकाएं हैं।

चौका-आरती किसी कल्पित देव के उपलक्ष्य में की जाने वाली सात्विक पूजा है; परन्तु पारख सिद्धांत में यह नहीं चलता; क्योंकि पारख सिद्धांत मनुष्य के अतिरिक्त किसी देव को नहीं मानता।

291. प्रश्न—जीव और सारशब्द में क्या अन्तर है?

उत्तर—वैसे सामान्यतया देहधारी को जीव कहते हैं, किन्तु जीव का अर्थ जड़ से सर्वथा भिन्न चेतन सत्ता है जो नित्य एवं अजर, अमर है।

सारशब्द निर्णय वचन को कहते हैं—सारशब्द निर्णय को नामा (पंचग्रन्थी)।

292. प्रश्न—क्या वस्तु के बिना भी नाम पड़ जाते हैं?

उत्तर—हां, जैसे भूत, प्रेत, नाना देवी-देवता, घोघर, भकाऊं आदि की कोई सत्ता नहीं; किन्तु मनुष्यों ने कल्पना करके नाम रखे हैं।

293. प्रश्न—स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धन—सबकी आशा छूट जाती है, परन्तु देह की आशा नहीं छूटती। इसके छूटने का क्या उपाय है?

उत्तर—स्वरूपज्ञान और स्वरूपस्थिति के अभ्यास से देहासक्ति का सर्वथा अन्त हो जाता है।

294. प्रश्न—जीव स्वतन्त्र है या परतन्त्र?

उत्तर—स्वरूपत: स्वतन्त्र है, कर्मवासनावश परतन्त्र है । वासना छोड़ दे तो स्वतन्त्र।

295. प्रश्न—जीव और ईश्वर का स्वरूप क्या है?

उत्तर—जीव ज्ञानमात्र है। जब वह माया-मोह से मुक्त हो जाता है तब वही शिव (ईश्वर) है। यथा—बद्ध दसा में जीव कहि, मोक्ष दसा में शीव
(विश्रामसागर)

296. प्रश्न—मुक्त जीव के पास जब स्थूल देह नहीं रहती तब वह सुख या आनन्द का उपभोग कैसे करता है?

उत्तर—सुख, आनंद आदि की कामना एक दरिद्रता है। आपको भूख न लगी हो तो भोजन में आनंद नहीं आयेगा। जब मुक्त जीव के पास कोई दुख, इच्छा, संकल्प आदि ही नहीं रहेंगे तब उसे सुख या आनंद की आवश्यकता ही क्या है। मोक्षावस्था दुखहीन अवस्था है।

297. प्रश्न—वैराग्य क्या है और वैराग्य तथा ब्रह्मचर्य में क्या अन्तर है?

उत्तर—मोह न होना वैराग्य है, विषयासक्ति न होना ब्रह्मचर्य है। मनसा, वाचा, कर्मणा मैथुन छोड़ देना ब्रह्मचर्य है और निखिल विश्व का राग छोड़ देना वैराग्य है।

298. प्रश्न—मानव का कर्तव्य क्या है?

उत्तर—निज-पर कल्याण करना। मन संतुलित एवं शांत होना ही कल्याण है।

299. प्रश्न—आदित्य ब्रह्मचर्य, ऊर्ध्वरेता तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारी किसे कहते हैं?

उत्तर—शुद्ध ब्रह्मचारी को आदित्य ब्रह्मचारी कहते हैं, वीर्यपात न होने देने वाले को ऊर्ध्वरेता कहते हैं और उपनयन (यज्ञोपवीत) से लेकर मृत्यु तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गुरुकुल में निवास करने वाले को नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं। वस्तुत: नैष्ठिक कहते हैं निश्चयात्मक स्थिर एवं पारगत को।

तुम पहले कैसे रहे इसकी चिन्ता छोड़ दो। आज से शुद्ध ब्रह्मचारी बन जाओ।

300. प्रश्न—जड़ से जड़ तत्त्व का निर्माण होता है या जीव का? फिर देह में जीव कैसा?

उत्तर—जड़ से जड़ तत्त्व का निर्माण नहीं होता, अपितु जड़ तत्त्व नित्य हैं। उन जड़ तत्त्वों से जड़ कार्य-पदार्थों का निर्माण होता है। जीव तो जड़ से सर्वथा पृथक नित्य चेतन है।

301. प्रश्न—कर्म का चेतन जीव पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर—वासना प्रभाव। वासना को जीतना चाहिए। बुरे कर्म छोड़कर अच्छे कर्म करे, परन्तु उसे भी अहंकार रहित होकर।

302. प्रश्न—अपने से बड़ों की बन्दगी करते समय तीन बार सिर झुकाते हैं, दो बार या चार बार क्यों नहीं?

उत्तर—भारतीय परम्परा में तीन का ज्यादा महत्त्व है। तीनों गुणों एवं मन, वाणी, कर्म—तीनों पर विजय पाने के लिए या तीनों तापों से मुक्त होने के लिए त्रिबार बन्दगी।

303. प्रश्न—मन की कल्पनाएं मिथ्या हैं, मुक्ति भी मन की कल्पना है, तो क्या वह भी मिथ्या नहीं हुई?

उत्तर—मुक्ति मन की कल्पना नहीं है; किन्तु कल्पनाओं से छूट जाना मुक्ति है। मैं के रूप में विराजमान यह स्वस्वरूप चेतन स्वभावत: असंग है। वह जड़ के सम्बन्ध में अपने आपको संयुक्त मान लिया है और यह भ्रम कर लिया है कि शरीर तथा शरीर सम्बन्धी प्राणी-पदार्थ मेरे हैं; इसलिए वह मान्यता के बंधन में बंधा है। वह जब भलीभांति समझ लेता है कि मेरा कुछ नहीं है, मैं असंग एवं निराधार हूं, तब वह मुक्त हो जाता है। चेतन मुक्त स्वरूप है और उसकी परम सत्ता है। अतएव मुक्ति मन की कल्पना नहीं, अपितु यथार्थ सत्ता है।

304. प्रश्न—विदेहमुक्ति में जब चेतन सत्ता मात्र रहता है और यह भी नहीं जान सकता कि मैं मुक्त होकर सुख-चैन से हूं, तो ऐसी मुक्ति से क्या लाभ?

उत्तर—विदेह मुक्ति में जीव के साथ देह न होने से वहां इन्द्रिय-मन आदि का सर्वथा अभाव होता है, और इन्द्रिय-मनादि का अभाव होने से विषयों को जानने-जनाने का कोई कारण ही नहीं होता; अतएव विदेह मोक्ष में प्रपंचों का सर्वथा उपशमन है। वह सदा के लिए अनंत शांत है।

मनुष्य अत्यन्त विषयासक्त है। वह मन-इन्द्रियों द्वारा हर समय पांचों विषयरूप दृश्यों को ग्रहण करते रहने में सुख मानता है, यद्यपि वही दुख है। वह अविवेकवश मुक्ति में भी दृश्यों को नहीं छोड़ना चाहता। परंतु दृश्यों का ग्रहण मुक्ति नहीं, अपितु बन्धन है।

भूख लगने पर दुख होता है और भोजन मिलने पर सुख, रोग लगने पर पीड़ा होती है और जब उस रोग से छुटकारा हो जाता है तब आनंद लगता है। यदि रोग न लगे तो तज्जनित आनंद भी नहीं। विदेह मुक्ति सर्वथा दुखहीन अवस्था है, इसलिए वहां सुख एवं आनन्द की भी आवश्यकता नहीं।

सुख की लालसा एक दरिद्रता है। वस्तुत: दरिद्र आदमी ही कुछ चाहता है। सच तो यह है कि जो कुछ चाहता है वही दरिद्र है। विदेहमुक्ति जीव की सम्पन्न दशा एवं पूर्णता है। अतएव वहां सुख-दुख, क्लेश-आनंद, बेचैनी-चैन—सबका अभाव है। विदेहमुक्ति ऐसी शाश्वत शांति है जिसका वर्णन वाणी से असंभव है।

305. प्रश्न—जड़ प्रकृति का विस्तार निस्सीम है। इस निस्सीम प्रकृति से निकलकर मुक्त जीव कैसे और कहां स्थित हो सकता है?

उत्तर—इस चेतन जीव का जड़ प्रकृति से सम्बन्ध केवल मन-इन्द्रियों द्वारा है। उसके अभाव हो जाने पर चारों ओर प्रकृति के जाल बिछे रहने पर भी उसका और जीव का सम्बन्ध नहीं होता।

अज्ञानदशा और प्रकृति के सम्बन्ध में रहते हुए भी जब देहधारी जीव गाढ़ी निद्रा में जाता है तब उसका प्रकृति का सम्बन्ध नहीं-जैसा हो जाता है। गाढ़ी निद्रा में भी चेतन की सत्ता है ही, तभी तो पुकारने पर जागकर बोलता है कि मैं हूं; परन्तु गाढ़ी नींद में किसी का सम्बन्ध नहीं रहता।

मन, वाणी, शरीर और वासना का जब अन्त हो जाता है, तब जीव का सम्बन्ध सबसे विच्छिन्न हो जाता है। उसका प्रकृति से किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं रहता। प्रकृति का जाल सर्वत्र बना रहने पर भी मुक्त चेतन सबसे सर्वथा असंग एवं निराधार है।

जीव का जड़ से सम्बन्ध स्मरण मात्र है। विदेह मोक्ष में स्मरण तथा उनके साधनों का सर्वथा अन्त होने से उसका जड़ से सम्बन्ध नहीं रहता।

306. प्रश्न—जीव मुक्तावस्था में निराधार एवं असंग रहता है, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है? कम से कम अनुमान प्रमाण तो होना ही चाहिए।

उत्तर—जड़ दृश्य क्रियाशील रहते हुए उसकी सत्ता नित्य है और उस जड़ दृश्य का जो द्रष्टा है, जो मैं के रूप में ज्ञानतत्त्व है, उसकी भी सत्ता नित्य है।

मान लो, किसी की अवस्था 90 वर्ष की है, तो वह अनुभव करता है कि मैं वही हूं जो 80 वर्ष के पहले था। हम लोग भी अपने को वही अनुभव करते हैं जो 30-40 वर्ष के पहले थे। जो अपनी ज्ञानवृत्ति से जड़-प्रकृति में हलचल मचा रखा है, क्या उसकी सत्ता समाप्त हो जायेगी? कदापि नहीं।

वासना-वश जीव प्रत्यक्ष ही जन्मांतरों में भटकता है। जो देह धरता है वही उसे छोड़ता है और जो देह छोड़ता है वही देह धरता है। वही जीव जब मनुष्य देह रहते-रहते वासनाओं से मुक्त हो जाता है तब वह पुनः देह में नहीं आता। देह में न आने मात्र से उसकी सत्ता मिट नहीं सकती। विद्युत तार और बल्ब होने से प्रकट होती है और जब तार तथा बल्ब का सम्बन्ध नहीं रहता तब वह प्रकट नहीं होती; परन्तु इससे उसकी सत्ता मिट नहीं जाती।

चेतन जड़ का परिणाम नहीं है। चेतन की जड़ से सर्वथा पृथक नित्य सत्ता है। वह वासनावश जन्मांतरों में भटकता है और वासना त्याग हो जाने पर सत्ता मात्र रह जाता है। विदेह मोक्ष की सत्ता में विवेक ही महा प्रमाण है।

* * *

307. प्रश्न—अपनी मेहनत की कमाई से अपना निर्वाह लेते हुए मोक्ष साधना करना अच्छा है कि प्रारब्ध-बल पर विचरते हुए मोक्ष साधना करना अच्छा है?

उत्तर—दोनों अच्छे हैं। वस्तुत: अपनी मेहनत की कमाई पर अपना निर्वाह लेते हुए साधना करना चाहिए और इसी स्थिति में ही अपने को साधना में खूब मांज लेना चाहिए। जब वैराग्य की प्रचण्डता होती है तब अपने आप निवृत्ति मार्ग में व्यक्ति अग्रसर हो जाता है। घर-गृहस्थी छोड़कर सच्ची वैराग्य दशा में विचरने वाले संतों द्वारा लोकमंगल का बहुत बड़ा कार्य होता है और लोक द्वारा उनके शरीर-निर्वाह का कार्य सम्पादित होता है।

अन्न, कपड़ा, यन्त्र आदि जीवन धारणोपयोगी समस्त वस्तुओं का उत्पादन प्रत्येक व्यक्ति नहीं करता; परन्तु प्रत्येक व्यक्ति जीवन धारणोपयोगी समस्त वस्तुओं के उपभोग करने का इसलिए अधिकारी है, क्योंकि वह किसी-न-किसी प्रकार अपने कर्मों द्वारा समाज की प्रगति में अपना योगदान करता है। जैसे किसान अन्न उपजाकर, कारखाने वाले कोई कपड़ा, कोई यंत्रादि बनाकर, पुलिस देश की आंतरिक रक्षा करके, सेना देश की सीमा रक्षा करके, कर्मचारी तथा वकील अन्य व्यवस्था द्वारा जनता की रक्षा करके, डाक्टर जनता का स्वास्थ्य संरक्षण करके देश का काम करते हैं।

विचार करके देखा जाये तो संतों का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। समाज और देश को सद्‌बुद्धि का प्रकाश देना संतों का काम है।

यदि सारथी मदिरा पीकर रथ हांकता है तो निश्चित ही उसकी लगाम ढीली होगी तथा फलस्वरूप घोड़े रथ को गड्ढे में ले जायेंगे। शरीर रथ है, इंद्रियां घोड़े हैं, मन लगाम है और बुद्धि सारथी है। यदि व्यक्ति की बुद्धि ही भ्रष्ट हो तो पूरा जीवन डूब जायेगा। मैं पूछता हूं कि बुद्धि के सुधार के लिए कौन-सी दुकान है? सरकार की ओर से कौन-सी संस्था है जहां मनुष्यों की बुद्धि सुधारी जाती है? वह संस्था नि:शुल्क संतों की है जो मनुष्य की बुद्धि सुधारती है। सरकार दण्ड दे-देकर दुष्ट को सज्जन नहीं बना पाती; परन्तु संतजन अपने उत्तम व्यवहार तथा सदुपदेश से दुष्ट को सज्जन और दुराचारी को सदाचारी बना देते हैं। परमशांति एवं कल्याण की प्राप्ति का द्वार विवेकी संतों की संगत ही में खुलता है।

अतएव जिन संतों द्वारा समाज का इतना बड़ा कल्याण होता है क्या वे समाज द्वारा शरीर-निर्वाह पाने के भी अधिकारी नहीं हैं? वस्तुत: संत अपनी ही कमाई खाते हैं। वे जितना खाते हैं उसके असंख्य गुणा समाज को देते हैं।

308. प्रश्न—जीव देह के आधार में है या जीव के आधार में देह है?

उत्तर—जीव के आधार में देह है। जीव के निकल जाने पर देह बेकार हो जाती है। वैसे कर्म-वासना वश ही जीव और देह का सम्बन्ध है, उसके समाप्त होते ही जीव निराधार एवं असंग रह जाता है।

309. प्रश्न—जीव और देह का सम्बन्ध कैसे छूटेगा?

उत्तर—सम्बन्ध अज्ञान तथा मोह मात्र है। पुरुषार्थ द्वारा उसके अभाव होने पर सम्बन्ध कट जायेगा। जब जीव प्रकृति सम्बन्ध को स्वप्नवत, सारहीन एवं दुखपूर्ण समझकर अपने पूर्णकाम पूर्णतृप्त स्वरूप को पहचान लेगा तब वह प्रकृति के जाल से छूट जायेगा।

310. प्रश्न—जीव अक्रिय होने का क्या प्रमाण है?

उत्तर—वह इन्द्रिय-मन का सम्बन्ध लेकर ही कुछ क्रिया करता है। आंख रहते हुए भी यदि उसे बन्द कर ले तो वह नहीं देखता, कान बन्द कर ले तो नहीं सुनता। सुषुप्ति अवस्था में मन-इन्द्रियों के ठप हो जाने से जीव में कोई क्रिया नहीं होती। अतएव देह-इन्द्रिय संघात में रहकर ही जीव क्रिया करता है और इनके सम्बन्ध से सर्वथा छूटकर अक्रिय तथा शांत है।

311. प्रश्न—जड़ और चेतन दोनों जब सर्वथा भिन्न हैं तो सम्बन्ध क्यों है?

उत्तर—भिन्न का ही सम्बन्ध होता है, एक में सम्बन्ध नहीं हो सकता। जड़-चेतन का सम्बन्ध अनादि है। जैसे चावल के साथ ही छिलका (भूसी) होने पर भी छिलका उतार देने पर चावल नहीं उगता, इसी प्रकार जीव और जड़ का सम्बन्ध अनादि होते हुए भी अपने आप को जड़ से पृथक समझकर जड़ से निष्काम हो जाने पर जीव पुनः जन्म धारण नहीं करता।

312. प्रश्न—जीव के कल्याण के लिए मन की क्या स्थिति होनी चाहिए?

उत्तर—अनासक्त।

313. प्रश्न—सांख्ययोग और कर्मयोग में क्या अन्तर है?

उत्तर—निर्वाह के अतिरिक्त मन, वाणी, शरीर से कर्मों का त्याग—सांख्ययोग है तथा अहंकार-कामना त्यागकर लोकमंगल के लिए कर्म करते रहना—कर्मयोग है।

314. प्रश्न—हम अच्छे कर्म करते हुए भी दुखी हैं, दूसरे बुरे कर्म करके भी सुखी हैं, ऐसा क्यों?

उत्तर—आप यदि दुखी हैं, तो निश्चित है कि आपके सब कर्म अच्छे नहीं हैं। पूर्ण अच्छे कर्म में दुख होता ही नहीं। यदि कोई प्रारब्धकृत दुख भयंकर शरीर व्याधि आदि है, तो वह पूर्व जन्म के अपने बुरे कर्म के फल हैं।

कोई बुरा कर्म करके सुखी नहीं हो सकता, भले ही वह पूर्व जन्मों के सौभाग्य से या आज के लन्दफन्द से धनी हो; परन्तु बुरा कर्म करने से उसका

चित्त निरन्तर जलता ही रहेगा।

315. प्रश्न—साहेब बन्दगी का क्या अर्थ है?

उत्तर—स्वामी! आपकी वन्दना है। यह एक शिष्टाचार है।

316. प्रश्न—स्वरूपस्थिति क्या है? कैसे करें?

उत्तर—जीव का अपने आप शांत हो जाना स्वरूपस्थिति है। सेवा, स्वाध्याय तथा साधना करने से स्वरूपस्थिति होती है। पहले खूब सेवा और स्वाध्याय करो।

317. प्रश्न—क्या कारण का भी कारण होता है?

उत्तर—कारण कारणरहित होता है। ''मूले मूलाभावादमूलं मूलम्'' (सांख्य-दर्शन 1/69)। अर्थात मूल के मूल का अभाव होने से मूल अमूल होता है।

318. प्रश्न—पारख सिद्धान्त मनुष्य के अतिरिक्त किसी देवता को नहीं मानता; तो इस सिद्धान्त में संध्यापाठ किसलिए किया जाता है?

उत्तर—संध्यापाठ में प्रत्यक्ष देव संत-सद्गुरु की वन्दना, उनके शुभ-गुणों का वर्णन एवं आध्यात्मिक ज्ञान है। इन सब का मन पर प्रभाव हो, इसलिए संध्यापाठ किया जाता है।

319. प्रश्न—मानव का अधिकार क्या है?

उत्तर—स्वतन्त्रता, स्ववशता; और यह मिलती है मन-इन्द्रियों एवं इच्छाओं को जीत लेने पर।

320. प्रश्न—विपत्ति के समय कैसे निपटें?

उत्तर—धैर्य से।

321. प्रश्न—हानि-लाभ क्या है?

उत्तर—बन्धनों में बंधे रहना हानि है, उनसे छूट जाना लाभ है।

322. प्रश्न—पहले पाप कर लिया, फिर ज्ञान हुआ। अब उस पाप से कैसे उद्धार हो?

उत्तर—पुनः पाप न करने से।

323. प्रश्न—मनुष्य किसके विवश है और वह उससे कैसे छूटे?

उत्तर—मनुष्य विषयों की वासनाओं के विवश है। यह जीव विषय-वासना में ही बंधा है। इससे छूटने का रास्ता है विवेकी सद्गुरु की भक्ति, सेवा, सत्संग, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, विवेक, वैराग्यादि का अवधारण।

सुख की इच्छा में व्यक्ति बंधा है और विवेक-वैराग्य द्वारा उससे छूट सकता है।

324. प्रश्न—हम अपने दैनिक जीवन में अच्छा-बुरा जो कुछ करते हैं, वह ईश्वर की इच्छा से होता है या हमारे मन की इच्छा से या पूर्वजन्मों के कर्मों के विधानानुसार?

उत्तर—आपके मन की इच्छा के अनुसार। पूर्व जन्मों के भले-बुरे कर्मों के तीव्र संस्कार हमें भले और बुरे की ओर प्रेरते अवश्य हैं; परन्तु वे हमें विवश करके भले या बुरे कर्म करा नहीं सकते। कर्म करने में हम आज स्वतन्त्र हैं। उसमें पूर्व कर्म-संस्कार सहायक मात्र हैं, सर्वेसर्वा नहीं। संगत, साहित्य और चिंतन से तदनुसार बुद्धि बनती है और जैसी बुद्धि वैसे कर्म होते हैं। अतएव हमें सत्संग करना चाहिए, सद्ग्रंथ पढ़ना चाहिए और मन में अच्छे विचार रखने चाहिए, जिससे कर्म अच्छे बनें; क्योंकि अच्छे कर्म करनेवाला ही सुखी होता है।

* * *

325. प्रश्न—देवदत्त ने बुद्ध से 5 बातें स्वीकार करने की प्रार्थना की थी, उन्होंने स्वीकार नहीं किया, इसलिए वह बुद्ध का शत्रु बन गया था। तो वे पांच बातें कौन हैं?

उत्तर—देवदत्त महात्मा बुद्ध की गद्दी चाहता था। उसमें असफल होने से उसने संघ में फूट डालने के लिए नाना प्रकार के षड्यंत्र रचा। उनमें एक षड्यंत्र यह भी था कि बुद्ध को ऐसे नियम बनाने के लिए विवश करें जो व्यवहार में निभ न सकें और पीछे बुद्ध तथा संघ को बदनाम किया जाये और यदि नियम न बनावें तो भी बदनाम किया जाये। विनय पिटक के चुल्लवग्ग—संघ भेदक स्कंध—में इसका विवरण है। देवदत्त ने जो पांच नियम बुद्ध से मनवाना चाहा था वे ये हैं—

(1) भिक्षु (बौद्ध साधु) जीवनपर्यन्त वन में निवास करे, गांव में बसने वाले को दोषी माना जाये।

(2) भिक्षु जीवनपर्यन्त मधुकरी (टुकड़े) मांगकर खाये, निमन्त्रण पर भोजन करने वाला दोषी माना जाये।

(3) भिक्षु जीवनपर्यन्त फेंके हुए चीथड़ों को सिलकर पहने, जो गृहस्थ द्वारा दिये हुए नये वस्त्र पहने वह दोषी माना जाये।

(4) भिक्षु जीवनपर्यन्त वृक्ष के नीचे रहे, जो छत के नीचे रहे वह दोषी माना जाये।

(5) भिक्षु जीवनपर्यन्त मछली-मांस खाने वाला न हो, जो मछली-मांस खाये वह दोषी माना जायेगा।

बुद्ध ने इन नियमों को अस्वीकार कर दिया। उक्त नियमों में पांचवां मानने योग्य था, शेष अस्वाभाविक थे।

326. प्रश्न—मुक्ति के लिए क्या ज्ञान के साथ ध्यान आवश्यक है? क्या आप ध्यान करना मानते हैं?

उत्तर—ज्ञान के साथ ध्यान आवश्यक है। ज्ञान कहते हैं अपने अविनाशी चेतन स्वरूप को सर्व प्राकृतिक वस्तुओं से पृथक समझ लेना और ध्यान कहते हैं नित्य कुछ समय के लिए स्थिर आसन से बैठकर संकल्पों को एकदम शून्य कर देना। अन्ततः स्वरूप-विचार में निरन्तर निमग्न रहना ध्यान है।

शब्द, ज्योति, नाद, बिन्दु या किसी महापुरुष का स्मरण करना, उसमें मन बांधना यह पहले दर्जे का ध्यान है। इससे मन में एकाग्रता आने की आदत पड़ती है। सारे संकल्पों का द्रष्टा बनकर मन को एकदम शून्य कर देना—अंतिम ध्यान है। जैसा कि सांख्यशास्त्र के रचयिता कपिल महाराज ने कहा है—"ध्यानं निर्विषयं मनः"—मन का संकल्पहीनत्व ध्यान है।

हम लोग मन को एकाग्र करने के लिए पहले वैराग्यवान संत-पुरुष का ध्यान करते हैं। इसके आगे साधना की तीन श्रेणियां मानते हैं—विवेक, द्रष्टा और स्थिति। शरीरादि से अपने चेतन स्वरूप को विचार द्वारा भिन्न करना विवेक है, संकल्पों को देख-देखकर उन्हें छोड़ते रहना द्रष्टा होना है और संकल्पों का एकदम अभाव होकर शांत हो जाना स्थिति है। यही अन्तिम ध्यान है।

327. प्रश्न—पारख और पारखी में क्या अन्तर है?

उत्तर—पारख कहते हैं ज्ञान को जो एक गुण है और पारखी कहते हैं चेतन को जो एक व्यक्ति (द्रव्य) है। गुण और गुणी अभिन्न होता है; अतएव पारख और पारखी एक है।

328. प्रश्न—प्रारब्ध एवं संस्कार में क्या अन्तर है?

उत्तर—सुख-दुख भोग के लिए प्रस्तुत शरीर प्रारब्ध है और मन की अच्छी-बुरी वासनाएं संस्कार हैं। प्रारब्ध भोग प्रायः अदृश्य होता है। कोई नहीं

जानता कि एक स्वस्थ मनुष्य कब भयंकर व्याधि से ग्रसित हो जायेगा, उसके स्वजन एवं पदार्थों का उससे वियोग हो जायेगा और यह भी कोई नहीं जानता कि प्रतिकूल परिस्थिति कब चली जायेगी। कुछ ऐसे सुख-दुख हैं जो अपने पूर्वजन्मों के कर्मफलों में मनुष्य पर बरबस आते हैं, वही प्रारब्ध है।

जहां तक संस्कारों का प्रश्न है, वे दृश्य हैं। अच्छे-बुरे जो विचार मन में उठते हैं उन्हें सब जानते हैं। अतएव मनुष्य बुरे संस्कारों, वासनाओं एवं विचारों को मिटाकर अच्छे संस्कारों, वासनाओं एवं विचारों को बढ़ा सकता है।

329. प्रश्न—मन के दुर्विचार कैसे दूर किये जायें?

उत्तर—आज-कल में एक दिन शरीर का अन्त निश्चित है। इस सत्यता से आंखे नहीं मीची जा सकतीं। और शरीर के नाश के साथ आज की सारी भौतिक उपलब्धियां शून्य हो जायेंगी। यह मौत की याद मनुष्य के मन को निर्मल बनाती है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति का अपना असली स्वरूप शुद्ध चेतन है। उसमें कामादि विकार नहीं हैं। सारे विकार अविवेकजनित हैं। अतएव अपने शुद्ध चेतन स्वरूप का स्मरण और शारीरिक मौत की याद रखने से मन की निर्मलता होती है।

330. प्रश्न—क्रोध को जीतना चाहता हूं, परन्तु वह समय पर प्रकट हो जाता है। उसे कैसे जीतूं?

उत्तर—जो व्यक्ति जितना अहंकार और कामना के वशीभूत होगा वह उतना ही क्रोध प्रकट करेगा। मन की प्रतिकूलता न सह पाने से क्रोध आता है और अहंकारी आदमी ही सहना नहीं चाहता।

क्रोध करने से खून खौलता है, बुद्धि मारी जाती है और मनुष्य न करने योग्य काम करता तथा न कहने योग्य शब्द कहता है। क्रोध से नुकसान के सिवा कुछ नहीं है। अत: नित्य प्रात: उठकर बिस्तर पर ही पांच मिनट तक दृढ़ प्रतिज्ञा करो कि आज पूरा दिन क्रोध नहीं आने दूंगा और सोने के पूर्व बिस्तर पर पूरे दिन पर नजर डालकर विचारो कि कब क्रोध आया और उसके कारण पर विचार करके क्रोध पर ग्लानि करो और क्रोध न होने देने का संकल्प करो। यह क्रम नित्य जागने के बाद तथा सोने के पूर्व दोहराओ और लगातार महीनों करते चलो, देखोगे क्रोध बहुत कम हो जायेगा और कुछ दिनों में उस पर पूर्ण विजय मिल जायेगी।

331. प्रश्न—मैं बच्चों को पढ़ाता हूं। उन्हें समय-समय पर गाली एवं ताड़ना देना पड़ता है। ऐसा कहां तक उचित है? यदि अनुचित है तो मुझे क्या रास्ता है?

उत्तर—अध्यापक को बच्चों को गाली देना पड़े, यह तो मेरी समझ के बाहर है। किसी को भी गाली देना अपने ही हीन संस्कार, गलत आदत एवं असभ्यता के लक्षण हैं। अतएव शपथ ग्रहण कर लो कि तुम आज से किसी को भी गाली नहीं दोगे। गाली तो कोई लेता नहीं, वह देनेवाले को ही लौटकर पड़ती है। अध्यापक के मुख से तो गाली कभी निकलनी ही नहीं चाहिए। अध्यापक का काम बच्चों को केवल अक्षर ही पढ़ाना नहीं, अपितु उनमें उत्तम संस्कार डालना भी है। जो अध्यापक शराब, सिगरेट, बीड़ी पीता; तम्बाकू-पान खाता, गाली बकता, मैला-कुचैला रहता, झूठ बोलता तथा ऐसे अन्य गलत आचरण करता है उससे बच्चे क्या सीखेंगे; अतएव अध्यापकों को बहुत सुसभ्य होना चाहिए।

रहा ताड़ना देना, सो केवल मारने-पीटने से बच्चों को विद्या नहीं आती, प्रत्युत इससे उनका दिल दब जाता है और वे पतित हो जाते हैं। हां, शासन बनाये रखने के लिए कुछ सन्न-फन्न अवश्य चाहिए। बच्चों को निर्दयतापूर्वक पीटना बहुत गलत है। डांट-गांस कर सहारे से काम लेना चाहिए।

332. प्रश्न—प्राण, जीव, आत्मा में अन्तर है या नहीं? यदि अन्तर है तो किस प्रकार?

उत्तर—प्राण तो वायुतत्त्व का अंश एवं जड़ है। जीव चेतन है, जड़ से पृथक है। चेतन ही आत्मा है। आत्मा कहते हैं खुद को। यह जो अहं पदार्थ है यह चेतन है, यही आत्मा है, अपना है, अपना स्वरूप है, देहोपाधि युक्त प्राणधारियों को भी जीव कहा जाता है, जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि, कीटादि; और देहरहित शुद्ध चेतन को भी जीव कहा जाता है। अतएव जीव का निरुपाधि एवं वास्तविक स्वरूप चेतन है। वह मैं ही हूं, वही आत्मा है। अत: जीव, चेतन, आत्मा 'मैं' के ही पर्याय हैं।

* * *

333. प्रश्न—सद्गुरु कबीर का सिद्धान्त एक है—'पारख'। तो कबीरपन्थी लोग नाना मत क्यों स्थापित करते हैं? अनेक तरफ खींचने से क्या जनमानस की श्रद्धा इस ओर से कम नहीं हो जायेगी?

उत्तर—निश्चित ही सद्गुरु कबीर का सिद्धान्त पारख है। वे कहते हैं—''भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी, पारख देहि लखाई। कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सब की भाई''॥ बीजक, शब्द 115॥ ''पारखी से संग करु, गुरुमुख शब्द विचार''॥ बीजक, साखी 82॥ ''पारख बिना बिनाश है, कर विचार होहु भीन''॥ बीजक, साखी 159॥ पारख की परिभाषा देते हुए सद्गुरु

श्री पूरण साहेब कहते हैं—''जाते सकलो परखिया, सो पारख निज रूप। तहाँ होय रहु स्थीर तू, नहि झांईं भ्रम कूप॥'' अर्थात जो सबको परखता, जानता है वह चेतन स्वरूप ही पारख है। अत: अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ, किसी प्रकार मन की कल्पना, भास, अध्यास में न पड़ो।

कबीरपंथी क्या, मानवमात्र का कल्याण पारखबोध में ही है, फिर कबीरपंथियों को तो एकजुट से पारख सिद्धान्त का अवधारण एवं प्रचारण करना ही चाहिए। परन्तु संसार के विभिन्न लोगों के संस्कार, गुण, कर्म, योग्यताएं एक सदृश नहीं हैं। इस विभिन्नतापूर्ण संसार में सब बातों में सर्वथा एकता असंभव है।

किसी महान पुरुष की छत्रछाया में हर प्रकार के लोग आ जाते हैं। सद्गुरु कबीर के पंथ में भी विविध संस्कारों वाले व्यक्ति आये और उन सबको एक-जैसी बात नहीं पच सकी और वे नाना मत खड़ा कर दिये।

वैदिक होने के लिए ईशादि एकादश उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र—प्रस्थानत्रयी एवं वेदांत को मानना और उन पर टीका करना आवश्यक है। वैसे वेदांत के नाम से अद्वैत ब्रह्मवाद ही जाना जाता है जो स्वामी शंकराचार्य के प्रस्थानत्रयी भाष्य से समर्थित है। परन्तु उसी प्रस्थानत्रयी पर विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत परक अनेक भाष्य लिखे गये और एक मत के द्वारा दूसरे मत वालों को राक्षस का अवतार तक बताया गया। जैसे प्रसिद्ध वैष्णव माध्वाचार्य के गृहस्थ शिष्य त्रिविक्रम के पुत्र नारायण ने 'मणिमंजरी' तथा 'मध्यविजय' में शंकराचार्य को महाभारतोक्त मणिमान नामक दैत्य का अवतार कहा।

उपनिषदों का समन्वय करने के लिए गीता रची गयी तो उसमें अनेक मत खड़े हो गये। फिर ब्रह्मसूत्र रचा गया तो उसमें भी अनेक मत खड़े किये गये। इसी प्रकार सद्गुरु कबीर द्वारा पारख सिद्धांत प्रतिपादन के लिए बीजक रचा गया, तो उसमें अनेक मत खड़े हो गये।

तुम लिखते हो ''अनेक ओर खींचने से क्या जनमानस की श्रद्धा इस ओर से कम नहीं हो जायेगी।'' तुम इस प्रकार क्यों नहीं सोचते कि यदि कबीरपंथ में पारख सिद्धांत ही होता तो इस पंथ में थोड़े बौद्धिक स्तर के विचारक ही आ पाते; परन्तु इसमें अनेक मत होने से एवं सद्गुरु कबीर की वाणी सर्वग्राही होने से महान सद्गुरु कबीर के पंथ में सभी संस्कार वाले संतोषपूर्ण आश्वासन पाकर अपने को ही कबीर का सच्चा अनुयायी समझते हैं। तो इसमें श्रद्धा घटने की अपेक्षा बढ़ती ही दिखती है। अनेक विचार, संस्कार एवं मत को धारण करने वाले कबीरपंथियों को एक जगह देखकर हमारे मन में तो श्रद्धा

का ही उभाड़ होता है। सर्वदर्शन संग्रह के रचयिता माध्वाचार्य की निम्न पंक्ति तुम याद कर लो—''माल्यं कस्य विचित्रपुष्परचितं प्रीत्यै न संजायते?'' अर्थात अनेक रंगों के फूलों की माला किसके मन को नहीं अच्छी लगती!

334. प्रश्न—एक तरफ लिखा मिलता है ''अनइच्छा जो कुछ मिलै, सो भोजन करि लेन।'' दूसरी तरफ दूसरे ग्रंथ में लिखा मिलता है ''आमिन को अज्ञा तब दीन्हा। नाना व्यंजन तुरतहिं कीन्हा॥'' यह विरोधाभास क्यों?

उत्तर—पहली बात वैराग्यपरक है। वैराग्यवान सहज प्राप्त शुद्ध और स्वास्थ्यकर देखकर ग्रहण करते हैं। इच्छा नहीं करते कि अमुक वस्तु मिले। दूसरी बात भक्तिपरक है। गुरु ने सेवक को आज्ञा दी कि वह भोजन पकावे। अत: कोई विरोध नहीं है।

335. प्रश्न—''टूका में से टूक दे, चीर माहि सो चीर। देत न साधू सकुचिये, यों कथि कहहिं कबीर।'' तो क्या गृहस्थ के पुराने कपड़े साधु पहनें?

उत्तर—यहां का अभिप्राय है कि गृहस्थ लोग स्वयं जिस स्थिति में हों उसी में से काटकपट कर संतसेवा करते रहें। कोई पुराना कपड़ा या जूठी रोटी देने की बात नहीं है।

336. प्रश्न—काम, आलस्य और अहंकार कैसे दूर हों?

उत्तर—स्वाध्याय, सत्संग, सद्विवेक होने पर जब यह बात समझ में आयेगी कि विषयसेवन करना अपने आप को खोना है तब धीरे-धीरे काम पर विजय हो जायेगी। अहंकार तब मिटता है जब यह समझा जाता है कि अपना स्वरूप देहादि से सर्वथा पृथक है। सारी माया देह के साथ मिट जायेगी।

आलस्य तन-मन का पाप है, यह समझकर उसे त्यागो और कर्मशील बनो।

337. प्रश्न—सभी अवतार तथा महापुरुष उत्तरीभारत या उत्तर प्रदेश में ही क्यों होते हैं? इधर ही अधिक तीर्थस्थल भी हैं—ऐसा क्यों?

उत्तर—यदि आर्य लोग भारत के ही मूल निवासी हैं तो निश्चित ही वे उत्तरी भारत के निवासी थे और यदि वे बाहर से आये तो भी उत्तरी भारत में ही आकर बसे। भारत में आर्य लोग शरीर से गोरे और बली, ऊंचे-पूरे, मेधासम्पन्न, मनोबली और विद्या-बुद्धि सम्पन्न थे। वे सिंध, पंजाब, दिल्ली से लेकर पूरे उत्तरी भारत में फैले थे। उन्हीं के रचे वेद, उपनिषद्, शास्त्र, रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध और जैनों के अपार ग्रंथ हैं। ये ही लोग पीछे

भारत में यत्र-तत्र फैल गये थे। विदेश से जितने हमलावर आये प्राय: पश्चिम-उत्तर से होकर उत्तरी भारत में ही आये। इसलिए यहां अनेक संस्कार, विद्या, बुद्धि और कलाओं से सम्पन्न जातियों का समागम हुआ। आर्य, शक, हूण, यवन, अंग्रेज सबने अपने बिस्तर उत्तरी भारत में खोले। अतएव यहां अनेक उथल-पुथल हुए। अनेक संस्कृतियों के आदान-प्रदान हुए। फिर इधर अच्छे-अच्छे पुरुषों, संतों, विद्वानों का जन्म होना स्वाभाविक ही है। इसीलिए राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, कबीर, तुलसी आदि यहां हुए।

जिनमें मनोबल, शरीरबल, बुद्धिबल होते हैं, वे जिधर बढ़ना चाहते हैं उधर बढ़ जाते हैं। इसीलिए इधर चोर-डाकू भी बड़े-बड़े हुए, शूरवीर भी बड़े-बड़े हुए, विद्वान-संत भी बड़े-बड़े हुए और माने गये अवतार भी हुए। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि भारत के अन्य तरफ शूरवीर, विद्वान-संत नहीं हुए। चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, टैगोर, अरविन्द अनेक महापुरुष बंगाल में हुए। बंगाल उत्तर प्रदेश नहीं तो उत्तरी भारत अवश्य है, तो दक्षिणी भारत में शंकराचार्य आदि, महाराष्ट्र में नामदेव आदि, गुजरात में गांधी, दयानन्द आदि हुए।

भारत के बाहर जरथुस्त्र, कन्फ्यूशियस, लाओत्ज़े, सुकरात, मूसा, ईसा, मुहम्मद कितने नाम लिए जायें अनेक महापुरुष हुए हैं। आधुनिक बड़े-बड़े वैज्ञानिक और साहसी यूरोप, अमेरिका तथा रूस में हो रहे हैं। हमारे दक्षिणी भारत में भी अच्छे-अच्छे संत, वैज्ञानिक और विद्वान हुए तथा हैं।

जो लोग यह अहंकार करने लगते हैं कि हमारे यहां इतने बड़े-बड़े पुरुष हुए, इसलिए हम बड़े हैं, वे निरे भोले हैं। बड़े पुरुष क्षेत्र, प्रदेश, देश में सीमित नहीं किये जा सकते। वे भले किसी एक भूखण्ड में जन्म लेते हैं; परन्तु वे पूरी मानवता के हैं। जो व्यक्ति उनके आदर्शों से शिक्षा लेगा वे उसी के हैं। हमारे बाप-दादा ऐसे-ऐसे बड़े थे—इस अहंकार में कोई सार नहीं है। हां, उनके उच्च आदर्शों का हमारे जीवन में अनुकरण होना चाहिए।

भारत के अन्य प्रदेश में भी तीर्थस्थल माने गये हैं, वैसे उत्तर प्रदेश में इसकी सर्वाधिक बहुलता अवश्य है। तीर्थराज प्रयाग भी उत्तर प्रदेश में ही है। इसमें भी उत्तरी भारत की आर्य जाति की ही विशेषता है। वैसे पूरे भारत एवं विश्व में वहां के लोग अपने-अपने ढंग से तीर्थस्थल एवं उत्सव-पर्व के स्थल स्थापित किये हैं।

उत्तर प्रदेश या उत्तरी भारत में अधिक महापुरुष क्यों? मेरे विचार से इसका सार उत्तर है कि यहां के बसे हुए मनोबल, शरीरबल, बुद्धिबल आदि से सम्पन्न आर्यों तथा अनेक संस्कृतियों के समागम का यह फल है।

जो विचारक इस पर अपनी खोज की बातें भी प्रस्तुत करेंगे, उनका आदर किया जायेगा।

* * *

338. प्रश्न—अंत:करण एवं सूक्ष्म शरीर द्रव्य है या अद्रव्य?

उत्तर—करण कहते हैं ज्ञान प्राप्त करने के साधन को, वे दो प्रकार के हैं, बाह्य करण तथा अंत:करण। बाह्यकरण आंख, नाक, कान, जीभ तथा चमड़ी हैं और अंत:करण मन है, जिसे कार्यभेद से मनन करने से मन, अनुसंधान एवं खोज करने से चित्त, निर्णय देने से बुद्धि तथा स्वीकार करने से अहंकार कहते हैं।

अन्त:करण अर्थात भीतरी ज्ञान का साधन। अन्त:करण एवं मन वासनाओं का समुच्चय है, वासनाएं स्वयं में कोई द्रव्य नहीं, किन्तु वासनाएं जहां टिकती हैं वह केवल शुद्ध चेतन नहीं हो सकता; अपितु जड़ तत्त्वों के सूक्ष्मतम कणों की ग्रन्थि होनी चाहिए। तार और बल्ब स्वयं में प्रकाशस्वरूप नहीं, प्रकाश की शक्ति वाली बिजली है; परन्तु वह तार एवं बल्ब आदि के आधार बिना प्रकट नहीं हो सकती। इसी प्रकार जड़ द्रव्यों में चेतना नहीं। चेतना चेतन में है; परन्तु वह बिना जड़ द्रव्यों से निर्मित अन्त:करण एवं इन्द्रिय के प्रकट नहीं हो सकती। अतएव जहां वासनाओं का ठहराव है वह अन्त:करण द्रव्य के ही आधार में रहेगा। अभाव से भाव नहीं होता। इस प्रकार अन्त:करण को द्रव्य कहा जा सकता है।

रहा सूक्ष्मशरीर वह तो वासनायुक्त द्रव्यात्मक है ही। अद्रव्य से तो कुछ भी नहीं हो सकता।

तुम कहोगे तो वासना क्या है? वासना एवं राग, द्रव्य नहीं है; इसलिए उसका विवेक द्वारा अभाव हो जाता है। वैराग्यवान जीवन्मुक्त पुरुष के भी जीवनपर्यन्त अन्त:करण एवं सूक्ष्म शरीर का अभाव नहीं होता। यदि उसका अभाव हो जाये तो शरीर का सम्बन्ध ही कट जाये। अभाव केवल राग-द्वेषादि का होता है।

339. प्रश्न—निष्काम कर्म होना तो असम्भव है। जीवन में सब कर्म सकाम ही होते हैं। यदि निष्काम कर्म होते हैं तो उसकी क्या परिभाषा है?

उत्तर—लोक-परलोक के सांसारिक पदार्थों एवं मान-प्रतिष्ठा की कामना रखकर कर्म करना सकाम कर्म है। और अनासक्त पुरुषों द्वारा लोकमंगल के लिए अपना कर्तव्य समझकर कर्म करना निष्काम कर्म है; जिसमें अहंकार तथा

कुछ पाने की कामना नहीं रहती।

सर्वथा अनासक्त जीवन्मुक्त पुरुषों द्वारा भी लोकमंगल के कार्य होते हैं; फिर उनको कौन-सी कामना रहती है? जीवन्मुक्तों द्वारा जो लोकहिताय कार्य होते हैं उन्हें निष्काम कर्म न कहा जाये तो निर्विषय कर्म कहना पड़ेगा। यदि रागवान के उलटे विरागवान होते हैं तो सकाम कर्म के उलटे निष्काम कर्म भी होते हैं।

340. प्रश्न—जीवन के पूर्वार्ध में जो हिंसक रहा है वह यथार्थ स्वरूपज्ञान पाकर मोक्षकार्य का पूर्ण पुरुषार्थ करके क्या इसी जीवन में पूर्ण वासनाहीन एवं जीवन्मुक्त हो सकता है?

उत्तर—स्वरूपज्ञान हो जाने पर जिसने हिंसादि क्रिया त्यागकर साधना मार्ग में एकरस चलने का निश्चय किया और चल रहा है तथा दीर्घकाल साधना में एकरस व्यतीत किया और यदि उसको पूर्ण वैराग्य का उदय हो गया तो वह निश्चय ही जीवन्मुक्त हो सकता है।

विशाल देव कहते हैं—

चोरी हिंसा लूट कर, पाछे जेहि को ज्ञान।
पूरा दुख अनुभव भये, जो तेहि से बिलगान॥
साधु संग सद्ग्रन्थ में, जो तिन पाय निवास।
दिन-दिन बाढ़ा प्रेम जो, पाय स्वरूप मवास॥
बहुत काल तेहि में गयो, दृढ़ता पूर स्वरूप।
जो छूटै तन भाव यहि, कबहुँ न दुख के कूप॥

(मुक्तिद्वार 6/49-51)

341. प्रश्न—चरणोदक-शीदप्रसादी का भक्ति से क्या सम्बन्ध है? यह भक्तों के लिए उचित है कि अनुचित है?

उत्तर—चरणोदक-महाप्रसाद वेदान्ती, वैष्णव, कबीरपंथी आदि में चलते हैं। इनका व्यवहार बढ़ाते-बढ़ाते लोग अभद्र कर देते हैं। यह विनम्रता एवं प्रेम प्रदर्शन है। वैसे गुरु-संतों के चरणों में प्रेम रखना और उनके दिव्य आचरणों से प्रेरणा लेना चरणोदक है और महात्मा पुरुषों का सत्योपदेश ही उनका महाप्रसाद है।

342. प्रश्न—पारख स्थिति क्या है?

उत्तर—पारख का अर्थ ज्ञान है, स्थिति का अर्थ दशा, ठहराव या रुक जाना है। ज्ञान में रुक जाना, ज्ञान में ठहर जाना पारखस्थिति है। व्यक्ति का

अपना मौलिक नित्य स्वरूप ज्ञान है, पारख है। हर व्यक्ति ज्ञान स्वरूप है। मन के साथ न बहकर अपनी ज्ञान-दशा में स्थित हो जाना ही 'पारख स्थिति' है।

343. प्रश्न—स्व-निग्रह क्या है और वह कैसे हो?

उत्तर—'स्व' कहते हैं अपने आप को, निग्रह का अर्थ रोक या स्ववश करना है। अपने आपको अपने में रोक लेना, स्ववश कर लेना 'स्वनिग्रह' है।

हर व्यक्ति अपनी चेतनाधारा को निरन्तर विषयों में बहा रहा है। जो इसे रोककर अपने आप में समाहित कर ले वही 'स्व-निग्रही' है। स्ववशता ही स्व-निग्रह है। स्व-वशता तथा पर-वशता दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर है। स्व-वशता ही जीवन का चरम सुख है।

344. प्रश्न—जीवन में महत्त्व किसका है?

उत्तर—स्व-वशता का, पारखस्थिति का अर्थात स्वयं में पूर्णसंतुष्टि का।

345. प्रश्न—मानव का चरम लक्ष्य क्या होना चाहिए?

उत्तर—मानव का चरम लक्ष्य कुछ होना नहीं चाहिए; किन्तु है ही, उसे केवल पहचानना चाहिए। हर मनुष्य शांति का भूखा-प्यासा है। अखण्ड तृप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य है, और वह 'स्व-निग्रह' में ही सम्भव है। अतएव स्वरूपस्थिति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य है।

346. प्रश्न—'अभिनिवेश' किसे कहते हैं?

उत्तर—'अभिनिवेश' कहते हैं आग्रह या दृढ़ संकल्प को। वैसे यह योगदर्शन का पारिभाषिक शब्द है जो मरण-भयजनक अज्ञान एवं क्लेश के लिए व्यवहृत है। अर्थात अभिनिवेश कहते हैं 'मरण-भय' को।

347. प्रश्न—अपने स्वरूप को मन से कैसे पृथक करें?

उत्तर—मन संकल्पों का जाल और दृश्य है और व्यक्ति शुद्ध चेतन एवं मन का द्रष्टा है। देखने वाला देखी हुई वस्तु से पृथक होता ही है। सारे संकल्पों एवं मनन-धारा को अपने आप से पृथक जानकर उन्हें छोड़ते रहो और इस प्रकार अपने को हलका रखो।

348. प्रश्न—ध्यान अभ्यास करने पर प्रसन्नता आती है। अनेक सुन्दर रंग दिखते, नाद सुनाई पड़ता तथा आप जैसे गुरुजनों के रूप दिखते हैं; परन्तु आंख खोलने पर अन्धकार तथा भयानक दृश्य दिखाई देता है। दिन भर मन में बेचैनी रहती है। क्या ध्यानाभ्यास स्थगित कर दूं?

उत्तर—ध्यान में भी तुम मनोमय सृष्टि में ही रहते हो और उसके बाद भयानक दृश्य देखना यह तो और खतरा है। तुम्हें यदि फल उलटा दिखे तो इसे छोड़कर सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करो या कोई आस-पास अच्छे साधक संत से सम्मति लेकर साधना करो।

349. प्रश्न—सद्गुरु कबीर के कथनानुसार मरने के पहले मरना क्या है?

उत्तर—देह से लेकर समस्त दृश्य पदार्थों के अहंकार तथा कामना को छोड़ देना ही, मरने के पहले मरना है।

* * *

350. प्रश्न—नास्तिक और आस्तिक किसे कहते हैं?

उत्तर—'नहीं' कहने वाला नास्तिक है और 'है' कहने वाला आस्तिक है। अब क्या नहीं है और है, इसकी परिभाषा इस शब्द से स्वत: नहीं होती। कोई कहता है वेद को जो नहीं मानता वह नास्तिक है और कोई कहता है परलोक जो नहीं मानता वह नास्तिक है, कोई कहता है कि ईश्वर को जो नहीं मानता वह नास्तिक है और कोई कहता है अपने आपको जो नहीं मानता वह नास्तिक है। सब मिलकर कहते हैं भौतिकवादी नास्तिक हैं। मेरे अपने विचार से संसार का एक व्यक्ति भी नास्तिक नहीं है; अपितु सब आस्तिक हैं। सिद्धांत रूप में चाहे आंशिक ही सही सब नैतिकता को मानते हैं। भौतिक द्वंद्ववाद के प्रवर्तक मार्क्स भी आस्तिक हैं। क्योंकि पत्थर की मूर्ति और निर्गुण-निराकार ईश्वर का चिंतन करने वाला यदि आस्तिक है, तो प्रत्यक्ष जानदार सगुण-साकार, भूखे-नंगे मानव को रोजी-रोटी एवं कपड़े दिलाने के समर्थक बिलकुल आस्तिक हैं।

वस्तुत: नास्तिकता एक गाली है जो प्राय: हर सम्प्रदाय द्वारा दूसरे के लिए प्रयोग में आती है। हिन्दू, मुसलमान, इसाई, यहूदी, वैष्णव, वेदान्ती, जैन, बौद्ध प्राय: सब अपने से भिन्न मत वालों को नास्तिक कहते रहते हैं, जो गलत है। मानवतावादी किसी को नास्तिक नहीं कहता। इस विषय को विस्तार से समझने के लिए 'नास्तिक कौन' पढ़ें।

351. प्रश्न—संत कबीर का मूल उद्देश्य आत्मकल्याण था कि समाज सुधार?

उत्तर—आत्मकल्याण, अर्थात अपना कल्याण किये बिना कोई समाज सुधार कैसे कर सकता है? और व्यक्ति-व्यक्ति मिलकर ही समाज बनता है। अत: उनका उद्देश्य आत्मकल्याण तथा समाज कल्याण दोनों था।

352. प्रश्न—उपवास किसे कहते हैं? उपवास करना चाहिए या नहीं?

उत्तर—उपवास का सरल और लोकप्रचलित अर्थ जो जानते हो, वही है। अर्थात भोजन न करना। लोग गलत वस्तु और अधिक मात्रा में खा-खाकर आंत को खराब करते रहते हैं। यदि महीने में केवल दो उपवास कर लिया जाये तो अच्छा है। एक दिन पूरा उपवास रखने से आंत को आराम करने का अवसर मिल जाता है और वह स्वस्थ हो जाती है। उपवास के दिन नीबू का रस पानी में दो-तीन बार लेना चाहिए, और कुछ नहीं। यदि ज्यादा भूख लगे तो खांड़ या गुड़ का शरबत एक बार ले ले। खांड़-गुड़ न मिले तो चीनी का शरबत ले ले। समय से आधा दिन का उपवास या फलाहार पर रह जाना भी अच्छा है; किन्तु फलाहार थोड़ा ले। उपवास केवल स्वास्थ्य सुधार के लिए है, पाप काटने तथा कल्पित स्वर्ग पाने के लिए नहीं।

353. प्रश्न—'पूत कुपूत तो का धन संचय, पूत सपूत तो का धन संचय।' इसका अर्थ क्या है?

उत्तर—यदि खराब आचरण का एवं आलसी पुत्र है तो उसके लिए धन संग्रह करना बेकार है। वह सारा संचित धन थोड़े दिनों में उड़ा देगा और यदि सदाचारी तथा परिश्रमशील पुत्र है तो उसके लिए धन संचय करने की आवश्यकता ही नहीं है; क्योंकि वह स्वयं कमा लेगा। अतएव जो कमाओ उसे अपने और दूसरे तथा जन सेवा में खर्च करते रहो। अधिक धन-संग्रह अपराध है।

354. प्रश्न—अज्ञान सत है या असत?

उत्तर—असत। उदाहरणार्थ—सूर्य प्रकाशस्वरूप और सत है और अंधकार उसका अभाव मात्र एवं असत है। इसी प्रकार ज्ञान चेतन द्रव्य का गुण होने से सत है, और अज्ञान उसका अभाव एवं अंधकारधर्मा होने से असत है। अंधकार असत अवस्तु होने से उसे अन्य प्रकार हटाया नहीं जा सकता, प्रकाश लाने पर वह समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार अज्ञान अन्य प्रकार से नहीं मिट सकता, ज्ञान आने से वह नहीं रहता।

355. प्रश्न—आत्मा संसार का निमित्त कारण है या उपादान?

उत्तर—संसार का कारण तो जड़ प्रकृति है। आत्मा जड़ संसार से सर्वथा पृथक शुद्ध-बुद्ध है। हां, यह अनादि से जड़वासनावश और शरीर धारण करके संसार के वासनात्मक एवं चेतना जगत की सृष्टि का निमित्त कारण अवश्य बना है। किन्तु जो छह ऋतु, बादल, वर्षा, अनन्त ब्रह्मांड की क्रियाशीलता आदि है यह जड़ प्रकृति के पदार्थगत गुण-धर्म-क्रियाओं पर ही निर्भर है।

356. प्रश्न—सूक्ष्म शरीरों की उत्पत्ति किस प्रकार होती है?

उत्तर—सूक्ष्म शरीरों की उत्पत्ति अनादि वासनात्मक है। जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज बनते हैं, वैसे सूक्ष्म देह से स्थूल देह बनती है तथा स्थूल देह के संस्कार एवं वासना से सूक्ष्म देह बनती है।

357. प्रश्न—संतमत के प्रवर्तक सद्गुरु कबीर ही क्यों?

उत्तर—शास्त्र, महापुरुष, अवतार, पैगम्बर, ईश्वर और परम्परा—इनकी दोहाई देकर हर मतवादी जनता को अपने अंधविश्वास में घेरकर एक चक्कर में चला रहे थे। सद्गुरु कबीर इन सबसे हटकर स्वतन्त्र चिंतन, प्रवचन और आचरण करके और सारे कुहासों को काटकर समाज एवं संसार के लिए स्वतन्त्र चिंतन का द्वार खोल सके। इसलिए संतों एवं विद्वानों ने उनको संतमत का प्रवर्तक माना।

358. प्रश्न—सद्गुरु कबीर ने मन्त्र को महत्त्व दिया है कि नहीं?

उत्तर—झाड़-फूंक वाला मन्त्र तो बिलकुल बेकार है। सलाह को मन्त्र कहते हैं, सो ठीक है। जहां तक किसी शिष्य को दीक्षा देते समय उसे मन्त्र देने की बात है इसे कबीर साहेब ने स्वीकारा है कि नहीं यह कहना तो कठिन है। वैसे कोई गुरु शिष्य को दीक्षा देते समय संस्कारों को पुष्ट करने के लिए किसी शुभ नियम की पूर्ति तो करेगा ही। शिष्य को यथार्थ बोध देना ही दीक्षा है; परन्तु संस्कारों के दृढ़ीकरण के लिए सत्य निर्णय रूप किसी निर्धारित छोटे वाक्य को मन्त्र रूप में सुना देना उचित ही है।

359. प्रश्न—मनुष्य को केवल वर्तमान का ख्याल रखते हुए जीना चाहिए या भविष्य पर भी नजर रखना चाहिए?

उत्तर—जो व्यक्ति वर्तमान को पवित्र रखेगा और सदैव वर्तमान को पवित्र बनाये रखेगा उसका सारा भविष्य पवित्र होता जायेगा। वर्तमान को सुधारते रहने वाले को भविष्य के लिए अलग से चिंता नहीं करनी पड़ती। यहां तक कि जो व्यक्ति सदैव वर्तमान को निर्मल रखता है उसका भविष्य तो सुधरा होता ही है, उसके भूतकाल के भी मलिन संस्कार धुल जाते हैं।

अतएव—

वर्तमान में बरतो भाई। भूत भविष्य सब देउ बहाई॥ (निर्णयसार)

360. प्रश्न—कैसे साधु की पूजा करनी चाहिए?

उत्तर—साधु तो साधु है। साधु विषयविरक्त, सदाचारी एवं विवेक-वैराग्य सद्गुण सम्पन्न होता है और उसी की पूजा करनी चाहिए। रहा, किसी मेला-

भण्डारा की सामूहिक साधुमण्डली में पूजा करनी हो तो सबसे यह तो नहीं पूछते बनेगा कि आप सच्चे साधु हैं कि गलत? जिनको गलत जाना जाता हो उनकी पूजा नहीं करनी चाहिए। शेष भेष भगवान का यथायोग्य सत्कार कर देना चाहिए।

361. प्रश्न—जाति-पांति मानना चाहिए कि नहीं?

उत्तर—मनुष्य की एक जाति है। शुद्धता का आधार लेकर व्यवहार करना चाहिए।

362. प्रश्न—साधु के मिलने पर उससे उसकी जाति पूछना चाहिए कि नहीं?

उत्तर—बिलकुल नहीं। साधु तो पवित्र होता है। उससे जाति पूछने से क्या प्रयोजन?

जाति न पूछो साधु से, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान॥

(सद्गुरु कबीर)

वस्तुत: जाति मनुष्यमात्र से नहीं पूछना चाहिए। पूरे मनुष्य की एक जाति है—मानव।

* * *

363. प्रश्न—पशु का दूध उसके बच्चे का भाग है, उसे क्या मनुष्य को लेना चाहिए और दूध बछड़े का जूठ भी होता है?

उत्तर—पशु का दूध उसके बच्चे का भाग अवश्य होता है; परन्तु मनुष्य जो पशु की सेवा करता है, उसको भी तो पारिश्रमिक मिलना चाहिए। पशु को दुहा न जाये तो दूध बढ़ नहीं सकता, जैसे बनैले पशु का दूध नहीं बढ़ता। उनका दूध केवल उनके बच्चों के लिए ही होता है। जहां पशु पाले जाते और दुहे जाते हैं वहां दूध बढ़ता है और उस सारे दूध को बच्चा पीकर पचा भी नहीं सकता। अतएव बच्चे का पेट दूध से भरकर तथा उसके बड़ा हो जाने पर दूध, अन्न और चारा से उसका पेट भरकर दूध लेना कोई बुरा नहीं।

रहा, दूध पशु-बच्चे का जूठ होता है, परन्तु पशु के पन्हा जाने पर पशु का स्तन पानी से धो लेने पर वह स्वच्छ हो जाता है। सब ठीक से नहीं धोते और दूध कहीं से आया हुआ पीया-खाया जाता है यह प्रश्न आता है।

दूध मानव शरीर के लिए एक सात्विक उपयुक्त खाद्य-पदार्थ है और सभी धार्मिक सम्प्रदायों द्वारा स्वीकृत है। तुम्हारे सिद्धांत के पूर्व से आज तक के

समस्त संत-भक्त भी स्वीकार करते आये हैं। फिर शुद्धाशुद्ध का विचार शक्ति के अनुसार ही रख मिलेगा। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने कहा—

छूतिहिं जेंवन छूतिहिं अँचवन, छूतिहिं जगत उपाया।
कहहिं कबीर ते छूति विवर्जित, जाके संग न माया॥

(बीजक, शब्द 41)

प्रतिदिन भोजन को बचाते हुए भी पवित्र मक्खियां उसे पवित्र ही कर देती हैं! नल का पानी चाम के वायसर से छनकर आता ही है, कुआं-नदी में रहने वाले मेढक-मछली अपनी टट्टी-पेशाब से कुआं-नदी के पानी के शुद्ध करते ही रहते हैं! सारी दुर्गंधी से हवा तथा मुरदों से पृथ्वी पटी ही है। कहां जाओगे?

जिनकी रुचि न हो दूध न खायें। व्यक्तिगत कोई दूध छोड़ सकता है, समूहबद्ध समाज नहीं छोड़ सकता। यदि हठ से तथा शर्माशर्मी से छोड़ेगा तो ज्यादा दिन नहीं चलेगा और पीछे से उस समाज को पछताना पड़ेगा। इसलिए बहुत उछलकर नहीं चलना चाहिए। विचारवान और गम्भीर बनने की आवश्यकता है।

364. प्रश्न—व्यवहार में रहकर राग-द्वेष से रहित कैसे रहा जाये?

उत्तर—सारा व्यवहार क्षणिक, नाशवान एवं बीत जाने वाला समझकर।

365. प्रश्न—संकल्प-विकल्प का कारण क्या है? और ये शांत कैसे होंगे?

उत्तर—संकल्प-विकल्प का कारण इच्छा है। इच्छा जीत लेने पर संकल्प-विकल्प शांत हो जाते हैं।

366. प्रश्न—समय थोड़ा है, काम जरूरी, करना यही है—इसका भाव क्या?

उत्तर—जीवन क्षणिक है, शांति प्राप्ति का काम करना है; क्योंकि यही आवश्यक है, यही जीवनोद्देश्य है।

367. प्रश्न—सहज ध्यान क्या है?

उत्तर—जीव सहज स्वाभाविक सबका द्रष्टा है। जब सबको अपने से पृथक समझकर और सब समय सबका द्रष्टा बनकर सबसे अनासक्त रहा जाता है, तब यही सहज ध्यान की स्थिति होती है। सहज का अर्थ स्वाभाविक है और ध्यान का अर्थ निर्विषय एवं संकल्पहीन मन है। स्वरूपज्ञानपूर्वक जब स्वाभाविक निर्विषय एवं संकल्पों पर स्ववशता की स्थिति होती है, तब इसे सहज ध्यान कहते हैं।

368. प्रश्न—साधक, साधन, साधना, साध्य और सिद्धि क्या है?

उत्तर—प्रयत्नशील व्यक्ति साधक है, औजार साधन है, उसका प्रयोग साधना है, कोई विषय साध्य है और उसकी सफलता एवं प्राप्ति सिद्धि है। उदाहरणार्थ—किसान साधक है, हल-बैल आदि साधन हैं, गोड़ना-जोतनादि साधना है, अन्न साध्य है और अन्न की प्राप्ति सिद्धि है। इसी प्रकार मुक्ति का इच्छुक साधक है, विवेक-वैराग्यादि साधन हैं, इनका अभ्यास साधना है, मोक्ष एवं शांति साध्य है और उसकी प्राप्ति सिद्धि है।

369. प्रश्न—मरणोपरान्त जीव की क्या स्थिति होती है?

उत्तर—आज की आध्यात्मिक उन्नति या अवनति ही मरणोपरान्त उन्नति या अवनति एवं सुख या दुख का सूचक है। वर्तमान में जो पवित्र मन वाला है वह आज भी सुखी है और आगे भी सुखी रहेगा। और जो आज गंदा मन वाला है वह आज दुखी है और आगे भी दुखी रहेगा। अतएव वर्तमान के सुधार-बिगाड़ ही भविष्य के सुधार-बिगाड़ हैं।

370. प्रश्न—शरीर छूटते समय ज्ञानी-अज्ञानी दोनों को पीड़ा होती है; फिर दोनों में क्या अन्तर है?

उत्तर—पीड़ा दो प्रकार की होती है, एक मानसिक और दूसरी शारीरिक। काम, क्रोध, लोभ, मोह, चिंता, शोक आदि मानसिक पीड़ा है और रोगजनित कष्ट शारीरिक पीड़ा है। प्रारब्धवशात ज्ञानी-अज्ञानी सबको शारीरिक पीड़ा होती है, किन्तु मानसिक पीड़ा केवल अज्ञानी को होती है, ज्ञानी को नहीं।

कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि प्रारब्धवशात ज्ञानी पुरुष को शरीरांत के समय शारीरिक पीड़ा अधिक हो जाती है और कई अज्ञानी व्यक्तियों को उस समय शारीरिक पीड़ा बिलकुल नहीं होती; क्योंकि उनके पूर्व प्रारब्ध ठीक हैं। ज्ञानी की सफलता आज की शारीरिक पीड़ा से मुक्त होने में नहीं है। उसकी सफलता मानसिक पीड़ा से मुक्त होने में है जो पवित्रता एवं स्वरूपज्ञान के उदय होने में है।

371. प्रश्न—स्थूल शरीर में चेतन किस तरह रहता है? शरीर से निकलते समय वह दिखाई नहीं देता। चेतनवस्तु दिखने जैसी है कि नहीं, वह साकार है कि निराकार?

उत्तर—जैसे मकान-मालिक मकान में रहता है, वैसे जीव शरीर में रहता है। अन्तर यह है कि मकान-मालिक इच्छानुसार मकान में तथा उसके बाहर आ-जा सकता है; परन्तु जीव पूर्व के प्रारब्ध कर्मों में बंधा हुआ जीवनपर्यन्त शरीर में रहता है और एक बार इससे निकल जाने पर इसमें पुनः नहीं आता।

चेतन देह-इन्द्रिय-साधन से सबको देखता है। यह इन्द्रियों से देखा नहीं जा सकता; क्योंकि यह पांचों विषयों से परे है। इसलिए पांचों ज्ञान इन्द्रियों में नहीं आ सकता।

आंख से तो केवल रूप दिखाई देता है। अन्य चार विषय शब्द, रस, गंध, स्पर्श ही नहीं दिखाई देते, फिर चेतन को देखने की बात ही व्यर्थ है। निराकार शून्य को कहते हैं। चेतन ज्ञान गुण वाला सत्य पदार्थ है; इसलिए निराकार नहीं है। परन्तु उसे भौतिक पदार्थों के सदृश साकार भी नहीं कह सकते। वह मन-इन्द्रियों से ऊपर ज्ञानाकार एवं नित्य सत्तावान है।

372. प्रश्न—इस देहद्वारा किये गये कर्म के फल यदि अगले जन्मों में मिलते हैं, तो फल का क्या महत्त्व?

उत्तर—इस देह में जो अच्छे या बुरे कर्म किये जाते हैं, उनके फल तत्काल भी मिलते हैं और जन्मान्तर में भी। कर्ता ही को फल मिलता है, साधन को नहीं। किसी मनुष्य ने लाठी से किसी को मारा तो उस मारने वाले मनुष्य को दण्ड मिलेगा न कि लाठी को। जीव कर्ता है, देह कर्म करने का साधन मात्र है। अतएव कर्ता जीव आज और आगे सब समय रहता है; अत: फल उसी को मिलता है। यही प्रकृति का न्याय है।

373. प्रश्न—अतृप्त आत्मा क्या है?

उत्तर—जिस जीव की इच्छाएं पूरी नहीं होतीं, उसे अतृप्त आत्मा कहते हैं और जीवन्मुक्तों को छोड़कर कम-बेश सभी आत्माएं अतृप्त हैं। क्योंकि तृप्ति इच्छाओं के त्याग से मिलती है। ''अतृप्त आत्माएं सूक्ष्म शरीर लेकर घूमती रहती और लोगों के ऊपर आकर सताती रहती हैं''—यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण एवं अज्ञानपूर्ण है। जीवन्मुक्त आत्माओं को छोड़कर सभी आत्माएं अतृप्त हैं और वे जन्मांतर में घूमती रहती हैं।

374. प्रश्न—देवी-देवता और यज्ञ क्या है?

उत्तर—सद्गुण सम्पन्न पुरुष देवता तथा सुशीला नारियां देवी हैं और लोककल्याण सम्बन्धी रचनात्मक कार्य यज्ञ हैं।

* * *

375. प्रश्न—मुझे अपने जीवन को ऊपर उठाना है, क्या करूं?

उत्तर—अनासक्त और कर्तव्य तत्पर बनें और इसके लिए विवेकवानों का सत्संग करें।

376. प्रश्न—जीवन्मुक्त पुरुष की पहचान कैसे हो?

उत्तर—स्वयं जीवन्मुक्त होकर।

377. प्रश्न—क्या संसार स्वप्नवत है?

उत्तर—संसार पदार्थात्मक एवं द्रव्यात्मक है। बने हुए कार्य पदार्थ विनश जाते हैं; परन्तु कारण द्रव्य नित्य रहते हैं। अत: संसार प्रवाह रूप नित्य एवं यथार्थ है। जीव का उससे सम्बन्ध केवल स्मरण मात्र है। अतएव जगत स्वप्नवत नहीं, जगत का सम्बन्ध स्वप्नवत है।

378. प्रश्न—जीव को स्वप्नावस्था में ज्ञान रहता है कि नहीं?

उत्तर—ज्ञान द्वारा ही तो स्वप्न चित्रावली को देखता है।

379. प्रश्न—मन को रोकने का मुख्य साधन क्या है?

उत्तर—वैराग्य एवं अनासक्ति।

380. प्रश्न—सत्यनाम, पारखपद और चेतन में क्या अन्तर है?

उत्तर—चेतन ही को पारखपद अर्थात ज्ञानस्वरूप कहते हैं और वही सत्य है। फिर अन्तर क्या है।

381. प्रश्न—अपने आपको जीवन्मुक्त कब समझना चाहिए?

उत्तर—जब मन में किसी वस्तु का आकर्षण न हो।

382. प्रश्न—साधक कुछ दिनों में शिथिल क्यों हो जाता है?

उत्तर—थोड़ी ही सफलता में सन्तुष्ट हो जाने के कारण और मानप्रतिष्ठा में भूल जाने से शिथिल हो जाता है।

383. प्रश्न—भास, अध्यास, अनुमान तथा कल्पना में क्या अन्तर है?

उत्तर—दृश्य विषयों में सुखाकर्षण भास है, विषयासक्ति का हृदय में गहराई से गड़े रहना अध्यास है, अटकलबाजी अनुमान है और मन के राग-द्वेष सुख-दुख आदि कल्पना हैं।

384. प्रश्न—शरीरान्त के बाद दूसरे शरीर में क्या पूर्व जन्म के संस्कार अन्त:करण में रहते हैं?

उत्तर—वर्तमान में मनुष्यों के विभिन्न संस्कार गुण-कर्म, शारीरिक-मानसिक स्थितियों को देखते हुए पूर्व जन्मों के संस्कारों की प्रतीति होती है।

मुख्य बात है कि चेतन जीवों की जड़तत्त्वों से भिन्न स्वतन्त्र सत्ता का होना। जड़ तत्त्वों से चेतन का निर्माण होना असम्भव है और चेतन से जड़तत्त्व भी नहीं बन सकते। जब चेतन जड़ से भिन्न है और देह का निवासी भी है, तब देह छूटने पर पुनः देह का धारण करना स्वाभाविक बात है। यह नियम है कि जब तक कारण का विरोध नहीं होता तब तक कार्य बनने का अन्त नहीं होता। देह धारण में स्वरूप का अज्ञान, विषयों का राग तथा सकाम कर्म कारण है। इनका अभाव जब तक नहीं होता है, पुनर्जन्म होता रहेगा।

जड़ और चेतन दोनों पदार्थ नित्य हैं। उन दोनों का संयोग जन्म तथा वियोग मरण कहलाता है और जन्म-मरण का प्रवाह बराबर चल रहा है, तो उन्हीं-उन्हीं जीव तथा जड़ पदार्थों का संयोग-वियोग होता है। अतएव पुनर्जन्म तो स्वतः प्रत्यक्षसिद्ध प्रवाह है।

385. प्रश्न—किस कर्म के करने से मनुष्य शरीर मिलता है?

उत्तर—आज तुम्हें मनुष्य शरीर मिला है, उसका कल्याण-साधना में उपयोग करो। आगे, मनुष्यादि किसी शरीर पाने की कल्पना निरर्थक है। जो वर्तमान जीवन का सदुपयोग करता है उसका भविष्य उज्ज्वल है।

386. प्रश्न—साधु को खेती-बारी करना चाहिए कि नहीं?

उत्तर—साधु का काम है साधना करना, खेती-बारी करना नहीं; परन्तु यदि साधु ऐसे स्थान पर रह रहा है जहां खेती-बारी लगी है; तो उसे सहजतया कर-करा लेना ठीक है। फिर साधु-समाज में भी अनेक श्रेणी के लोग होते हैं। आश्रम और विचरन्त दो विधि साधु रहते हैं। नये साधक, रोगी तथा वृद्ध साधुओं के लिए आश्रम अधिक सहायक होता है। यदि आश्रम में खेती-बारी हो तो उसे गौण रखना चाहिए, मुख्य साधना पर जोर देना चाहिए।

यह ध्यान रहे, आवाज धीमी और कर्तव्य ऊंचा होना चाहिए। आश्रम और खेती-बारी की आलोचना करना मात्र साधना या साधुता नहीं है। आश्रम तथा विचरन्त दोनों में अच्छे और बुरे होते हैं।

387. प्रश्न—खेती-बारी करते हुए जीवन्मुक्ति का आचरण करके साधु जीवन्मुक्त हो सकता है कि नहीं?

उत्तर—यदि अन्न खाकर साधु जीवन्मुक्ति की रहनी धारण कर सकता है तो अन्न को पैदा करके खाने से जीवन्मुक्ति में क्या बाधा होगी? अपने हाथों से हल चलाकर और अन्न पैदा करके जीवन निर्वाह लेते हुए साधक जीवन्मुक्त हो सकता है और सारी क्रियाओं को छोड़कर जंगल में बैठने वाला भी बन्धनों में बंधा रह सकता है।

अपने हाथों से अन्न पैदा करके खाना या दूसरे का दिया हुआ अन्न खाना—अन्न खाना पड़ेगा। खास बात है कि यदि साधु अपने हाथों से ही अन्न पैदा करता हो तो वह केवल निर्वाह का लक्ष्य रखकर खेती का काम थोड़ा करे, शेष अधिक-से-अधिक समय सत्संग, स्वाध्याय एवं साधना में बिताये। मोक्ष-साधना के लिए साधक का जीवन अधिक से अधिक निवृत्तिपरक होना चाहिए। जिसे भोगों-ऐश्वर्यों की लालसा नहीं है, वह यदि अपने हाथों से ही निर्वाह के लिए खेती करेगा तो भी वह केवल पेट पूर्ति का ही लक्ष्य रखेगा। वह खेती-बारी में अधिक फंसा नहीं रहेगा। वह थोड़ा व्यवहार-धन्धा करके निवृत्तिपरायण रहेगा।

यह बात अलग है कि यदि साधु भजन करे तो उसे भोजन की कमी नहीं है। परन्तु कोई साधु भोजन का अपने हाथों ही प्रबन्ध करके भजन करना चाहे और भजन करे तो बुरा क्या है?

कितने आश्रमधारी गृहस्थवत केवल स्थूल व्यवहार में ही व्यस्त हैं, तो कितने विचरणशील लम्पट, दम्भी और अहंकारी हैं और दोनों क्षेत्रों में विवेकी पुरुष भी हैं; अतएव रहनी की विशेषता है।

सारत: औषधवत स्थूल कर्म होना चाहिए, जोर साधना पर होना चाहिए।

388. प्रश्न—खेती करने से जीवहत्या होती है, उसका पाप लगेगा कि नहीं?

उत्तर—केवल खेती करने में ही नहीं, चलने में, भोजन पकाने में, टट्टी, लघुशंका तथा स्नान करने में, श्वास लेने में, यहां तक कि बिस्तर पर लेटने में मच्छड़-खटमल दबकर जीवहिंसा होती है, परन्तु उक्त क्रियाओं में किसी का कोई हिंसा करने का उद्देश्य नहीं रहता।

खेती करने में असंख्य जीवों की हत्या होती है और असंख्य जीवों का पालन-पोषण भी। यदि खेती करने में पाप है तो पाप की कमाई से पैदा हुआ अन्न खाने में भी पाप होगा। फिर संसार में कोई भी निष्पाप नहीं होगा। अतएव मेरे विचार से कृषक का मन्तव्य अन्न पैदा करना है, जीवहत्या नहीं; इसलिए वह निष्पाप है। वह तो सबको अन्न खिलाकर पुण्य करता है।

389. प्रश्न—क्रियवान कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो आसक्तिपूर्वक किया जाये। आसक्ति का त्यागना ही जीवन्मुक्ति के मार्ग में बढ़ना है।

390. प्रश्न—क्या चेचक देवी है?

उत्तर—चेचक रोग है, देवी नहीं। उसको डरो मत, दवाई करो।

391. प्रश्न—वैराग्य एकरस क्यों नहीं होता?

उत्तर—क्योंकि शुद्ध अन्त:करणपूर्वक एकरस विवेक जाग्रत नहीं किया जाता।

392. प्रश्न—मैं संतों को देखकर उन्हीं जैसा बनना चाहता हूं, परन्तु बन नहीं पाता, कैसे बनूं?

उत्तर—साधु संगत, सद्ग्रन्थ अध्ययन एवं निरन्तर विवेक कीजिये।

393. प्रश्न—पिण्डोदक क्रिया का फल क्या मृतक को मिलता है?

उत्तर—जो जीव शरीर छोड़कर चला गया, उसे यहां का दिया हुआ कुछ नहीं मिलता। कर्म ही उसका साथी है।

* * *

394. प्रश्न—वेदों का महत्त्व क्यों है?

उत्तर—क्योंकि उनमें हमारे प्राचीनतम पूर्वजों के इतिहास, ज्ञान-विज्ञान, संस्कार, रीतिरिवाज आदि की झलकियां हैं। वे विश्व की प्राचीनतम समृद्ध पुस्तकें हैं जिनमें हम अपने पूर्वजों की गरिमा देख सकते हैं।

395. प्रश्न—जो अध्यापक तम्बाकू, सिगरेट आदि का सेवन करते हैं, क्या वे छात्रों का सही निर्माण कर सकते हैं?

उत्तर—अध्यापकों को छात्रों को भाषा-ज्ञान तथा प्रौद्योगिक एवं तकनीकी ज्ञान देने के साथ-साथ उनमें उत्तम चरित्र का संस्कार डालना चाहिए और यह तभी सम्भव है जब वे स्वयं सभी दुर्व्यसनों से रहित होकर नैतिक एवं सदाचारी जीवन व्यतीत करें।

396. प्रश्न—दुर्व्यसन तथा राग-द्वेष में लगे हुए साधु वेषधारी क्या समाज का हित कर सकेंगे?

उत्तर—साधु सदाचार, नैतिकता, शांति एवं निर्मलता का मूर्तिमन्त आदर्श होता है। दुर्व्यसन तथा राग-द्वेष में लिपटा हुआ व्यक्ति साधु है ही नहीं। साधुवेष, लम्बी आयु, प्रतिष्ठा, विद्वता आदि साधुता के मानदण्ड नहीं हैं।

397. प्रश्न—जीव (चेतन) और मन (इच्छा) में क्या अन्तर है?

उत्तर—जीव अविनाशी है, चेतन है और वही तुम हो। अर्थात तुम ही चेतन हो और मन संस्कारों को ग्रहण करने का एक साधन है जो तुमसे पृथक है। इच्छाएं मन की तरंगें हैं। मन तथा मन की इच्छाएं छाया के समान आने-जाने वाले नश्वर हैं; परन्तु जीव अविनाशी है।

398. प्रश्न—जीव और ज्ञान में क्या अन्तर है?

उत्तर—जैसे अग्नि और गरमी गुण-गुणी का नित्य समवाय सम्बन्ध है। अर्थात दोनों एक ही हैं। इसी प्रकार जीव और ज्ञान एक है। ज्ञान जीव का स्वभाव है।

399. प्रश्न—इच्छाएं क्यों पैदा होती हैं?

उत्तर—इच्छाएं दो प्रकार की होती हैं, अच्छी तथा बुरी। अच्छी इच्छाएं शुद्ध विचार से तथा बुरी इच्छाएं अज्ञान से पैदा होती हैं।

400. प्रश्न—संसार में सभी जीव बराबर हैं कि घट-बढ़?

उत्तर—जीव के शुद्ध स्वरूप एक समान हैं। देह छोटी-बड़ी तथा बुद्धि कम-वेश है। ज्ञान की कमी-वेशी के कारण हैं खानियों की भिन्नता तथा अनेक जन्मों के संस्कारों की भिन्नता। जैसे अनेक प्रकार के चश्में से देखने की शक्ति में घटी-बढ़ी होती है यद्यपि नेत्र एक समान हैं।

401. प्रश्न—पारख-समाधि में संकल्प की शांति अवस्था कितने समय तक रह सकती है?

उत्तर—अभ्यास जितना वैराग्यपूर्ण और दीर्घ समय से हो। जिस दिशा में जितना श्रम करो, उतनी सफलता।

402. प्रश्न—ध्यान से उठने के बाद व्यवहार में जब व्यक्ति बरतेगा, तब उसको हर्ष-शोक भी आयेंगे, तो जीवन्मुक्ति कैसे रह सकती है?

उत्तर—ध्यान में तो हर्ष-शोक होने का प्रश्न ही नहीं है, व्यवहार में ही हर्ष-शोक होते हैं और उन्हें त्यागकर ही जीवन्मुक्ति होती है। जीवन्मुक्त को हर्ष-शोक नहीं होते।

403. प्रश्न—ज्ञान, भक्ति, वैराग्य किसे कहते हैं?

उत्तर—अपने आप को देह, मन, प्राण आदि से भिन्न शुद्ध चेतन स्वरूप समझना—ज्ञान है, जितेन्द्रिय पवित्र सन्त पुरुषों एवं अन्ततः अपने स्वरूप की स्थिति में निष्ठा होना—भक्ति है तथा देहादि पंचविषयों के प्रति अनासक्त होना—वैराग्य है।

404. प्रश्न—पांच तत्त्व और पचीस प्रकृतियां कौन-कौन हैं?

उत्तर—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—ये पांच तत्त्व हैं। प्रथम चार तत्त्व गुण-धर्म युक्त द्रव्य हैं तथा आकाश गुण-धर्म रहित शून्य है।

पृथ्वी तत्त्व की पांच प्रकृति—हाड़, मांस, चाम, नस, रोम। जल की प्रकृति—लार, मूत्र, वीर्य, रक्त और पसीना। अग्नि की प्रकृति—भूख, प्यास, आलस्य, नींद और जमुहाई। वायु की प्रकृति—बलकरन, संकोचन, प्रसारन, बोलन और चलन।

आकाश की प्रकृति—काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय मानते हैं। परन्तु आकाश कोई द्रव्य न होने से उसमें कोई प्रकृति नहीं। फिर यदि कामादि प्रकृति हों तो वे छूट नहीं सकते; क्योंकि प्रकृति छूटती नहीं। अतएव कामादिक मनोविकार हैं, इसलिए वे साधना से मिट जाते हैं।

405. प्रश्न—कबीर साहेब ने नारी की निन्दा क्यों की है?

उत्तर—कबीर साहेब ने नारी की निन्दा कभी नहीं की। बीजक भर में जहां दो-चार जगह कुछ ऐसी चर्चा-सी लगती है, वह कामुकता का खण्डन है और ऐसी बहुत थोड़ी ही पंक्तियां हैं।

सद्गुरु कबीर ने तो नर तथा नारी दोनों का समान स्तर माना है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

पंडित देखहु हृदय विचारी, को पुरुषा को नारी॥ 1॥
सहज समाना घट घट बोलै, वाके चरित अनूपा॥ 2॥
वाको नाम काह कहि लीजै, न वाके वर्ण न रूपा॥ 3॥

(बीजक, शब्द 48)

बुझ बुझ पंडित बिरवा न होय, आधे बसे पुरुष आधे बसे जोय॥ 1॥

(बीजक, शब्द 50)

ऐसो भरम बिगुर्चन भारी॥ 1॥
वेद कितेब दीन औ दोजख, को पुरुषा को नारी॥ 2॥
माटी का घट साज बनाया, नादे बिन्द समाना॥ 3॥
घट बिनसे क्या नाम धरहुगे, अहमक खोज भुलाना॥ 4॥

(बीजक, शब्द 75)

406. प्रश्न—किसी के मरने पर उसकी लाश ले जाने वाले समाज के साथ जाना चाहिए कि नहीं और जनेऊ बदलना चाहिए कि नहीं?

उत्तर—लाश के साथ जाना तो एक सामाजिकता है जो जरूरी है। रहा जनेऊ बदलना, यह केवल रस्म है। जैसा करने से ठीक हो वैसा करे।

407. प्रश्न—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा शब्दादि पंच विषय—इन नौ तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर माना गया है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म शरीर क्या है?

उत्तर—चतुष्टय अन्त:करण द्वारा पंचविषयों का अध्यास ग्रहण होता है। पंचविषयों का अध्यास ही पुनर्जन्म का कारण होने से वही सूक्ष्म शरीर है। परन्तु चतुष्टय अन्त:करण और पंचविषयों का अध्यास शुद्ध जीव में नहीं ठहर सकते। अतएव तत्त्वों के सूक्ष्म अंश की एक ग्रंथि होनी चाहिए जो जीव के साथ में वासनाओं का वहन करती हो। अतएव पंच-विषयासक्ति एवं चतुष्टय अंत:करण का बीज-स्वरूप लेकर तत्त्वों के सूक्ष्मांश की ग्रंथि ही सूक्ष्म शरीर है।

* * *

408. प्रश्न—मूर्तिपूजा न मानने पर मां-बाप व गुरुजनों की फोटो में जूते मारने पर क्या पाप है?

उत्तर—किसी महापुरुष का चित्र या मूर्ति यदि घर में हो तो उसको साफ-सुथरा रखना ही उसकी पूजा है। उसको जल-भोजन पिलाने-खिलाने, उसे सुलाने-जगाने, उसकी आरती-वंदना करने की प्रक्रिया भोलापन एवं भावुकता मात्र है। वेश्या का चित्र देखने से यदि मन खराब हो सकता है तो वैराग्यवान सन्तों का चित्र देखने से मन में निर्मलता आये यह स्वाभाविक है। माता-पिता, वीर तथा राष्ट्ररक्षकों के चित्र देखकर उपकारभाव स्मरण होना सहज है।

लोग मूर्तिपूजा का तात्पर्य मानते हैं चित्र या मूर्ति को जल-भोजन पिलाने-खिलाने, उसे सुलाने-जगाने तथा उसकी आरती-वन्दना करने का उपक्रम करना। यह मूर्ति या चित्र को देखकर उन महापुरुषों के स्मरणों से प्रेरणा लेने को छोड़कर स्थूल क्रिया की खटपट में पड़ जाना है। रह गया, जिनमें ऐसी भावुकता है, जो लोग चित्र-मूर्ति को खिलाना-पिलाना चाहते हैं उन्हें खिलाने-पिलाने दीजिये। उनके विरोध के चक्कर में पड़ जाना तो अपना ही अज्ञान होगा। क्योंकि संसार में अनेक विचार और संस्कार के लोग हैं, सबके पीछे न पड़कर अपने सही पथ पर अग्रसर होते रहना है।

रही माता-पिता और गुरुजनों के चित्रों को जूते मारने की बात, यह तो हद दर्जे की बेवकूफी होगी। क्योंकि चित्रों की कोई उपयोगिता ही नहीं है, ऐसा तो कोई विवेकवान नहीं कहता।

विवेकवान मूर्ति एवं चित्र को केवल स्मृति के आधार मानते हैं; भावुकजन उन्हें रोटी-दाल खिलाना चाहते हैं। उन्हें खिलाने दीजिये।

409. प्रश्न—राम, कृष्ण आदि शास्त्रों के अनुसार रावण, कंस आदि पापी मनुष्यों का वध करने के बावजूद भी पूजे जाते हैं। क्या उन्होंने वध करके पाप नहीं किया, या वे शास्त्र ही झूठे हैं?

उत्तर—श्रीराम, श्रीकृष्ण राजनीतिक नेता थे। पापियों को मारना उनका काम था। फिर राजनीति में तो विरोधी पक्ष ही पापी होता है। हिन्दुस्तान के ख्याल से पाकिस्तान पापी है और पाकिस्तान के ख्याल से हिन्दुस्तान। राजनीति को छोड़कर धर्म के क्षेत्र में देखो, एक सम्प्रदाय के ख्याल से दूसरे सम्प्रदाय के लोग नास्तिक, काफिर, बेदीन, पापी, अपवित्र एतदर्थ नरक में जाने के अधिकारी होते हैं।

राम और कृष्ण के विषय में जितना लिखा गया है, वह सब इतिहास नहीं है; किन्तु उनमें इतिहास की झलकियां हैं। क्योंकि उनमें अधिकतम अतिरंजन एवं अतिशयोक्तियां हैं। उनमें कितना सत्य है और कितना काल्पनिक है, कह पाना कठिन है।

राम और कृष्ण के विषय में पाप और पुण्य की बातें छोड़ देने के बाद भी उनमें कुछ ऐसी ऊंचाइयां और गहराइयां हैं जिनसे वे पूजे जाते हैं।

410. प्रश्न—राम और कृष्ण ने पापियों को मारकर देश को सुखी बनाया; इसलिए उनकी पूजा घरोघर होती है; परन्तु गांधी जी ने भी अंग्रेजों को भारत से भगाकर देश को सुखी बनाया, तो उनकी पूजा घरोघर क्यों नहीं होती?

उत्तर—राम-कृष्ण के समय में उन्हें कोई नहीं पूजता था। उनके जीवनकाल के हजारों वर्ष बाद उनको ईश्वर के अवतार मानकर लोग पूजना शुरू किये। गांधी जी को भी आगे चलकर ईश्वर-अवतार होने की ना-समझी की जा सकती है।

411. प्रश्न—चरित्र-सुधार के लिए की गयी दृढ़ प्रतिज्ञा कैसे निभायी जाये?

उत्तर—जब चरित्र-सुधार में महान लाभ निश्चय हो जायेगा, निरन्तर सावधानी बरती जायेगी और दुर्गुणों को भयंकर सर्प एवं विषवत समझा जायेगा, तब चरित्र-सुधार की प्रतिज्ञा सरलता से निभायी जा सकती है। प्रतिज्ञा किसी महान पुरुष के सामने ली जाये तो अति उत्तम हो। कोई महान पुरुष न मिले तो अपने किसी अच्छे मित्र या बड़े पुरुषों के सामने ली जाये।

412. प्रश्न—क्या आत्मा जब जीवन्मुक्त हो जाता है तभी वह परमात्मा कहलाता है?

उत्तर—जीव का स्वाभाविक स्वरूप यदि निर्मल न हो तो वह निर्मल हो ही नहीं सकता। कोयला दूसरी वस्तु में लग जाये तो वह धोने से धुल जाता है; परन्तु स्वयं कोयला को सौ मन साबुन से धोया जाये तो भी वह उजला नहीं होगा। जीव स्वभावत: मलिन नहीं, किन्तु जड़ सम्बन्ध से उसमें मलिनता का आभासमात्र है। विवेक द्वारा मलिनता हट जाने पर वह निर्मल एवं जीवन्मुक्त है और जीवन्मुक्त आत्मा ही सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त है, उसी को परमात्मा कह सकते हैं। उसके अतिरिक्त परमात्मा तो केवल मन की कल्पना है।

413. प्रश्न—आज सद्गुरु कबीर के अनुयायियों में दो मत क्यों हैं? एक मानता है सद्गुरु का शरीर कमल फूल से हुआ तथा दूसरा मानता है कि माता-पिता से हुआ, सो क्यों?

उत्तर—हर महान पुरुष की शरण में हर श्रेणी के लोग आते हैं। सद्गुरु कबीर की शरण में भी इसी प्रकार हर श्रेणी के लोग आये। कबीर देव का उज्ज्वल पारख ज्ञान पाकर कुछ लोग विचारक हो गये और शेष भावुक ही बने रहे। कबीरदेव जैसे वस्तुपरक बुद्धिवादी निराले पारखी गुरु को पाकर वस्तुतथ्य के ठोस धरातल को छोड़कर कल्पना के स्वप्नलोक में भटकना कबीरदेव की कीर्ति में कलंक लगाने की चेष्टा करना है।

सृष्टिक्रम और कारण-कार्य-व्यवस्था के अटल प्राकृतिक नियमों से आंखें मूंदकर अलीक आकाशवाणी और अति मानवीय तत्त्व की कल्पना करना सद्गुरु कबीर को नहीं समझना है।

414. प्रश्न—सबसे बड़ा सुख और दुख क्या है?

उत्तर—सबसे बड़ा सुख सन्तोष है और सबसे बड़ा दुख विषय-इच्छा तथा मन की मलिनता है।

415. प्रश्न—कर्म, उपासना तथा योग की वास्तविकता क्या है?

उत्तर—दान, सेवा, लोकमंगल का कार्य एवं समस्त पवित्राचरण कर्म की वास्तविकता है; निर्मल सन्त एवं पूर्णकाम सद्गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धाभक्ति एवं स्वस्वरूप चेतन का निरन्तर चिन्तन उपासना की वास्तविकता है और मन का एकाग्र होना—योग की वास्तविकता है।

416. प्रश्न—शरीर का संचालन आत्मा करता है, तो समग्र सृष्टि का संचालन कौन करता है?

उत्तर—सृष्टि द्रव्य और गति का समुच्चय है। मौलिक द्रव्य पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु कहें या ठोस, तरल, वायव्य, अतिवायव्य कहें या आक्सीजन,

हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आदि कहें; अनादि हैं। द्रव्य अनादि तो उसकी गति भी अनादि। द्रव्य की गति ही उसकी सम्पत्ति है। अतएव सृष्टि के मौलिक द्रव्य (तत्त्व) अपने गुण, धर्मों एवं गति से सम्पन्न स्वयं अपने नियम में बरतते हैं, जिसे ऋग्वेद में ऋत कहा गया है। सारांश यह हुआ कि तत्त्वों के गुण, धर्मों एवं क्रिया से सृष्टि स्वयं प्रवाह रूप चलती रहती है।

417. प्रश्न—क्या श्री कबीर साहेब चौका करते थे?

उत्तर—श्री कबीर साहेब निर्भ्रांत सत्य द्रष्टा थे। वे चौका नहीं करते थे और न बीजक में उसकी कोई चर्चा है।

418. प्रश्न—चौका का क्या महत्त्व है जो अभी कबीरपंथ में चलता है?

उत्तर—चौका सनातनधर्मियों की सत्यनारायणव्रत कथा के समान एक काल्पनिक सात्विक पूजा है। समाज में अनेक योग्यता वाले लोग होते हैं। कबीरपंथ की कुछ शाखाओं में यह चलता है, पारख सिद्धान्त में नहीं चलता।

419. प्रश्न—क्या श्री कबीर साहेब ने वंश बयालिस की स्थापना की थी?

उत्तर—सद्गुरु कबीर स्वरूपज्ञान, सदाचार, मानवता आदि के उपदेशक थे। वे विरक्त संत थे, उनका मौलिक ग्रन्थ बीजक पढ़कर उनका सिद्धान्त समझिये। वे वंश बयालिस के स्थापक नहीं।

420. प्रश्न—साधक के मन में निरन्तर कौन-से विचार आने चाहिए जिससे वह साधना पथ से न डिगे?

उत्तर—शरीर नाशवान है, वह आजकल में छूट जायेगा। जहां अन्ततः कुछ अपना नहीं है, वहां की वस्तुओं के लिए राग-द्वेष में क्यों पड़ना?

421. प्रश्न—निष्काम भक्ति क्या है?

उत्तर—जो केवल चित्तशुद्धि के लिए की जाये।

422. प्रश्न—गृहस्थी में रहकर भक्ति कैसे करें?

उत्तर—जैसे बाजार के हल्लागुल्ला के बीच में भी अपना सौदा कर लिया जाता है।

423. प्रश्न—सत्संग के समय जो सद्वृत्ति रहती है, वह पीछे क्यों नहीं रहती?

उत्तर—क्योंकि सद्ग्रंथ अध्ययन, सद्विचार एवं साधना का पुरुषार्थ जारी नहीं रखा जाता।

424. प्रश्न—भक्ति-प्रधान व्यक्ति का लक्षण क्या है?

उत्तर—वह निर्मान, सेवापरायण, विनयी, अनासक्त तथा सत्यानुरागी होता है।

* * *

425. प्रश्न—मोक्ष कब से और किसके समय से होने लगा?

उत्तर—जब जिसको असत्य के त्यागपूर्वक सत्य स्वरूप का बोध हुआ तब उसका मोक्ष हुआ। जगत अनादि है जिसमें खरबों वर्षों का भी कोई महत्त्व नहीं है। ऐसे सीमातीत अनादि जगत में कौन बता सकता है कि कब से मोक्ष चालू हुआ है। जब कभी कोई सत्य स्वरूप में स्थित हुआ वह मुक्त हुआ।

426. प्रश्न—जान और ज्ञान में क्या अन्तर है?

उत्तर—जान मात्र सब जीव हैं; परन्तु बन्धन में हैं। ज्ञान का अर्थ है विषयासक्ति का त्याग करके स्वरूप में स्थित हो जाना।

427. प्रश्न—ज्ञान की बात आचरण में नहीं आती, यदि आचरण में लाने का प्रयत्न करते हैं तो गृहस्थी की जिम्मेदारी के कर्तव्य से रहित होते हैं?

उत्तर—धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते ज्ञान की बातों का आचरण होने लगता है। जब आचरण में लाभ निश्चय होगा तब स्वयमेव उधर गति होगी।

रही बात, आचरण करने से कर्तव्य का पालन छूट जायेगा, यह मिथ्या भ्रम है। भला, सन्मार्ग पर चलने से किसी का उचित कर्तव्य छूट जाता है? सदाचारी होकर कर्तव्य को सही ढंग से निभाया जा सकता है।

428. प्रश्न—यदि जीव के स्वरूप में भूल है तो उसका छूटना असम्भव है और यदि स्वरूप में नहीं है तो दुख क्यों है?

उत्तर—जीव के स्वरूप में भूल इसलिए नहीं है क्योंकि उसका प्रत्यक्ष त्याग होता है। इसीलिए विवेकवान भूल को त्यागकर दुखों से मुक्त हो जाते हैं।

429. प्रश्न—प्रवृत्ति और निवृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—मन का राग-द्वेष में फंसे रहना ही प्रवृत्ति है तथा राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त रहना ही निवृत्ति है।

430. प्रश्न—मनुष्य के ज्ञातव्य, कर्तव्य तथा प्राप्तव्य क्या हैं?

उत्तर—जड़-चेतन की भिन्नता तथा उसके स्वरूप ज्ञातव्य हैं, विषयासक्ति का त्याग कर्तव्य है तथा स्वरूपस्थिति प्राप्तव्य है।

431. प्रश्न—मूर्ति और फोटो की पूजा तथा चेतन-पूजा क्या है, दोनों के हानि-लाभ क्या हैं?

उत्तर—किसी महापुरुष तथा सन्त पुरुष की मूर्ति या फोटो यदि हो तो उसे स्वच्छ रखना उसकी पूजा है तथा उसको देखकर उन महापुरुषों की स्मृति में अपने भाव को पवित्र करना उससे लाभ लेना है। हानि यह है कि उसी जड़पिण्ड की धूप-दीप, भोग-राग में लगकर विवेक को जगाना ही नहीं।

चेतन-पूजा है जीव-दया की दृष्टि से किसी को भी खिला-पिला देना तथा ज्ञान एवं सदाचरण सम्पन्न पुरुष की मन, वाणी, कर्म से सेवा-उपासना करके उनसे ज्ञान तथा रहनी की प्रेरणा ग्रहण करना। चेतन-मूर्ति ही तुम्हें बोध दे सकती है।

432. प्रश्न—अच्छे सन्त किसे कहते हैं और उसकी परख कैसे हो?

उत्तर—जो विषयासक्ति, राग-द्वेष तथा उद्वेग से रहित है, वही अच्छा सन्त है। उसकी परख उसकी संगत करके होगी, परन्तु अपने में भी जब परखने की क्षमता हो।

433. प्रश्न—लोग बहुत धनी, गरीब तथा अति गरीब हैं। यह भिन्नता क्यों?

उत्तर—अपने-अपने पूर्व जन्मों के कर्मों की भिन्नता तो है ही, परन्तु वर्तमान की समाज-व्यवस्था एवं आर्थिक व्यवस्था की बहुत बड़ी गड़बड़ी है। इस विभिन्नता का यही कारण है।

जो मनुष्यों के शारीरिक गठन, बुद्धि और प्रतिभा में अन्तर है, यह उनके पूर्व जन्मों के कर्मों के परिणाम हैं। ऊंची योग्यता वाला व्यक्ति अधिक धन कमा लेगा, परन्तु वह जो अपने श्रमिकों में धन का उचित बंटवारा नहीं करता है तथा अपने निर्वाह के अतिरिक्त शेष धन को लोकमंगल में नहीं लगाता है तो यह उसका अपराध है। गरीबी-अमीरी की खाई पाटने के लिए सबको श्रमशील होना चाहिए तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था होनी चाहिए।

434. प्रश्न—पुनर्जन्म प्रत्यक्ष नहीं, वह अनुमान पर निर्भर करता है। क्या यह अनुमान सत्य है?

उत्तर—हर कार्य के पीछे कारण होता है। इस जीवन के पीछे भी कारण है। यह जीवन अचानक नहीं आ गया। जड़ और चेतन का संयोग जन्म तथा

उनका वियोग मृत्यु है और यह प्रवाह लोग सदा से देख रहे हैं। सबके कर्मों तथा फल भोगों की विभिन्नता तो प्रत्यक्ष ही है। अतएव पुनर्जन्म अनुमान साधित होते हुए प्रत्यक्ष सम्बलित एवं सत्य है।

435. प्रश्न—अपने पर्वत तुल्य दोष भी नहीं दिखते हैं और दूसरे के लघु दोष भी बड़े दिखते हैं, ऐसा क्यों?

उत्तर—जो बुराई स्वभाव में ढल जाती है, वह सहसा देखने में नहीं आती। दूसरे की बुराइयां अपने स्वभाव में नहीं हैं इसलिए वे दिख जाती हैं। इसके अतिरिक्त अपने दोष जानकर भी मनुष्य आंखें इसलिए मूंदता है क्योंकि उनको त्यागने में परिश्रम पड़ता है। दूसरे की बुराइयों को देखने तथा कहने में कुछ मेहनत नहीं। और फिर दूसरे की बुराइयों को देख तथा कहकर अपनी बुराइयों के लिए मनुष्य को सन्तोष मिलता है। दूसरों को बुरा कहकर लोगों में अपनी धाक भी जमती है। परन्तु यह सब मन का भ्रम है। दूसरे की बुराई करने वाला शीघ्र पतित हो जाता है।

436. प्रश्न—श्रद्धेय के समीप रहकर जैसी श्रद्धा बनी रहती है, वैसी श्रद्धा उनसे दूर रहकर भी बनी रहे, इसके लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर—श्रद्धा मन का बहुत ऊंचा गुण है। यह शीघ्र कहीं नहीं लगती, और यदि श्रद्धा का आधार सच है, श्रद्धालु पूर्ण समझदार है तथा श्रद्धेय पूर्ण पुरुष है, तो श्रद्धा घटने की बात ही नहीं है।

श्रद्धा बनी रहे इसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता और जो कुछ करके श्रद्धा होती है वह नकली है। जब तक जिस वस्तु में सुख-लाभ निश्चय रहेगा, तब तक उसके प्रति स्वाभाविक श्रद्धा रहेगी। जिस लाभ को लेकर श्रद्धा होती है वह निश्चय बने रहने पर श्रद्धा बनी रहती है और उसके उड़ जाने पर श्रद्धा भी उड़ जाती है। श्रद्धेय की अपूर्णता से भी श्रद्धा घट जाती है।

437. प्रश्न—साधु को आश्रम में रहकर तथा घूमते-विचरते हुए कौन-कौन-सी प्रमुख सावधानियां बरतनी चाहिए?

उत्तर—साधु या महंत को चाहिए कि वे आश्रम में स्त्री को न रखें। जो अतिथि हों थोड़े दिनों तक रहती हैं उनके लिए कोई बात नहीं, परन्तु उनके साथ उनके घर का कोई पुरुष होना चाहिए।

झाड़ू लगाना, बरतन मांजना, सफाई का काम करना, भोजन पकाना तथा आश्रम के अन्य कामों में सक्रिय रूप से लगकर सेवा का कार्य करना, धार्मिक ग्रंथों का पाठ, पूजा, कथा, सत्संग, पठन-पाठन आलस्य रहित होकर करना, लोभ-लालच, अहंकार तथा झगड़ा छोड़कर विनम्रता, सेवा, समता, त्याग,

सन्तोष हर जगह सुखदायी होते हैं।

भ्रमण में गृहस्थों का सम्बन्ध होता है। साधु को चाहिए कि वह गृहस्थों के यहां जाकर स्त्रियों से घनिष्ठता न करे। उनको उपदेश अन्य पुरुषों की उपस्थिति में करे, स्त्रियों से अपनी शारीरिक सेवा न ले। भक्तजन जो सेवा कर सकें उतने में सन्तुष्ट रहे। साधु आपस में समता तथा प्रेम का बरताव रखें। व्यवहार व परमार्थ के कामों में आगे रहना यहां भी आवश्यक है।

सार—साधु को श्रमशील, सेवापरायण, सन्तोषी, सरल, समतालु, स्वाध्यायनिष्ठ, साधना-परायण, शुद्ध ब्रह्मचर्य पालक, वैराग्यवान, कुसंग त्यागी और उद्वेगरहित रहनी बनाना चाहिए।

438. प्रश्न—आप कहते हैं कि स्वयं पूर्ण होकर ही प्रचार क्षेत्र में उतरना चाहिए, परन्तु देखा जाता है बिना पूर्णता प्राप्त किये ही साधु-साधक प्रचार करते हैं और उनसे बहुतों का सुधार भी होता है, तो क्या वे गलत करते हैं?

उत्तर—किसी योग्य एवं पूर्ण गुरु की शरण में रहकर सेवा, स्वाध्याय एवं साधना करते हुए सामने मिले श्रद्धालुओं को ज्ञान की चर्चा सुना देना ठीक है। परन्तु गुरु बनकर सक्रिय रूप में प्रचार क्षेत्र में उतरना अपूर्ण साधकों के लिए खतरा है। अपूर्ण गुरुओं, साधुओं, महंतों से जितना ज्ञान का प्रचार होता है, उससे अधिक अज्ञान, ईर्ष्या, वैमनस्य, घृणा, राग-द्वेष, स्वार्थपरता आदि का प्रचार होता है। जिन गुरुओं-साधुओं के पास भक्त एवं मुमुक्षु अपने कल्याण के लिए जाते हैं, यदि वे उनके पास राग-द्वेष तथा स्वार्थपरता पायें, तो उनको क्या शांति मिलेगी! अधिकतम गुरु जो उलझे हुए दिखाई देते हैं, इसका कारण यही है कि वे स्वयं पूर्ण हुए बिना प्रचार क्षेत्र में उतर आये।

वस्तुतः अनासक्त, पूर्ण सन्त पुरुष ही गुरु बनने का अधिकारी है, क्योंकि वह प्राप्त पदार्थों के राग-द्वेष में नहीं उलझेगा। अनासक्त पुरुष ही प्रतिष्ठा पाकर निर्मल रह सकता है। अधूरे लोग गुरु बनकर संसार से प्रतिष्ठा पाने पर राग-द्वेष के विकारों में डूब जाते हैं और उनके द्वारा संसार को बुरा आदर्श ही मिलता है।

सारे उपदेष्टा यही तो उपदेश कर रहे हैं कि राग-द्वेष से रहित होकर शांति प्राप्त करना चाहिए और यदि वे स्वयं राग-द्वेष में उलझे हुए अशांत हैं तो उनके उपदेशों का क्या मूल्य है? अतएव अधूरे गुरुओं द्वारा अच्छाई की अपेक्षा अंततः बुराई का अधिक प्रचार होता है।

साधक जिस अपनी शक्ति को गुरुवाई तथा प्रचार में लगाता है उसी को यदि सेवा, स्वाध्याय एवं साधना में लगाकर वैराग्य की रहनी बनावे और दीर्घकाल अभ्यास करके पूर्ण अनासक्त हो जाये और फिर उसके बाद वह

दूसरे के कल्याण की जिम्मेदारी ले, गुरु बने; तो संसार का सही कल्याण होगा। इससे साधु-समाज से गलत आदर्श समाप्त हो जायेगा और सर्वत्र लोकमंगल का रचनात्मक कार्य होने लगेगा।

439. प्रश्न—गुरु के प्रति हमारा कर्तव्य क्या है?

उत्तर—गुरु के द्वारा जो मिलता है यदि उसमें तुम्हें लाभ निश्चय होगा तो उनके प्रति तुम्हें क्या करना चाहिए, यह बताना नहीं पड़ेगा।

440. प्रश्न—क्या स्वभाव सुधरता है?

उत्तर—बिलकुल। उसी के लिए तो साधक होने का बीड़ा उठाया जाता है।

441. प्रश्न—जीवन की परम उपलब्धि क्या है? साधना की पराकाष्ठा पर पहुंचे हुए साधक की पहचान क्या है?

उत्तर—जीवन की परम उपलब्धि स्वरूपस्थिति की प्राप्ति है। राग-द्वेष रहित मन की शांति को पा जाना एवं अनुद्वेग, निष्काम जीवन ही साधना की पराकाष्ठा पर पहुंचे हुए साधक की पहचान है।

442. प्रश्न—गृहस्थी में रहकर अपना उद्धार कैसे करें?

उत्तर—पराई स्त्री को मां, बहन तथा पुत्री समझें और स्त्रियां पराये पुरुषों को पिता, भाई एवं पुत्र समझें। शक्ति चले तक किसी को पीड़ा न दो। दूसरे का धन अनुचित रूप में न लो। मेहनत करके खाओ। मांस, मछली, अण्डा, शराब, गांजा, भांग, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदि का सर्वथा त्याग करो। अपनी कमाई में से कुछ लोकमंगल के कार्यों में लगाओ। दीनों की सहायता एवं सन्तों की सेवा करो। सत्संग करो, भक्ति करो, सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करो। दूसरे किसी में दोष-दर्शन न कर केवल सबसे सद्गुण लो। देवी-देवादि की सारी भ्रांतियों को सत्संग, विवेक से हटाकर स्वस्वरूप चेतन का ज्ञान प्राप्त करो और दया, क्षमा, शील, विचार, सन्तोष से रहकर साधना द्वारा अपना कल्याण करो।

* * *

443. प्रश्न—पूर्णज्ञानी पुरुष क्या दूसरे की मन-गति जान सकता है तथा क्या उसके शरीर में कोई फेर-फार होता है?

उत्तर—जो ज्ञानी है, अपने मन का द्रष्टा है, वह संगत पड़ने पर बहुत कुछ दूसरे के स्वभाव की परख कर लेता है; परन्तु दूसरे के मन के संकल्पों को नहीं जान सकता। पूर्ण ज्ञानी के शरीर में कोई फेर-फार नहीं होता, केवल

आन्तरिक मन की स्थिति दिव्य हो जाती है।

444. प्रश्न—मन को स्थिर कैसे करें?

उत्तर—विवेकी संतों की उपासना, विवेक, वैराग्य और अभ्यास द्वारा मन स्थिर होता है। साधना सम्पन्न सन्त पुरुष के सहवास की बड़ी आवश्यकता है। सारा भेद भेदी से मिलता है।

445. प्रश्न—क्या आपको स्वरूप साक्षात्कार हुआ है? यदि हुआ है तो आपकी मानसिक दशा क्या है?

उत्तर—''मुझे स्वरूप साक्षात्कार हुआ है''—यह कहने का विषय नहीं है, रहने का विषय है। हम कह दें, तो आप समझ नहीं सकते। हां, इतना कह सकता हूं कि मेरी सारी कामनाएं पूरी हैं। मैं जिनके साथ रात-दिन वर्तमान करता हूं उन साधु-ब्रह्मचारियों, भक्तों एवं मनुष्यों से पूर्ण सन्तुष्ट हूं। मेरे शरीर द्वारा जो कुछ थोड़ा-बहुत हो रहा है, उसमें भी पूर्ण सन्तुष्ट हूं। मैं कैसे कहूं कि अपनी प्रतिष्ठा पाकर मेरे मन में हर्ष की गुदगुदी नहीं लगती, परन्तु उसे तुच्छ, नश्वर, स्वप्नतुल्य समझकर उसके अहंकार से रहित रहने का प्रयत्न करता हूं।

जो लोग मेरी निन्दा किये, मेरे ऊपर दोषारोपण किये, मैं नहीं कह सकता कि मेरे मन में उनके लिए क्षण मात्र के लिए घृणा न आ गयी हो, परन्तु यह मेरा प्रयत्न है कि मैं उनके प्रति सहृदय रहूं। जब-जब मेरे ऊपर अपमान-निन्दा के काले बदल आये तब-तब मुझे अपने जीवन में अद्‌भुत प्रकाश, साहस और धैर्य मिले। आज से बहुत पूर्व ही मुझे अनुभव हो गया है कि प्रतिकूलता मेरी परम प्रिया एवं मोक्ष प्रदायिका है।

जीवन में हानि और अभाव के खटक नहीं रहे तथा मन सदैव प्रसन्नता एवं तृप्ति में भरा है, विशेष क्या कहूं।

446. प्रश्न—'श्री' माया को कहते हैं फिर वैराग्यवान सन्तों के नाम में उसका विशेषण क्यों लगाया जाता है?

उत्तर—श्री का अर्थ शोभा भी है। ऐसे स्थल पर अर्थ है सद्‌गुण रूपी शोभायुत।

447. प्रश्न—तन, मन तथा धन सद्‌गुरु को अर्पित करने के बाद शिष्य के पास क्या बच रहता है?

उत्तर—कुछ न बच रहना ही तो शिष्यत्व है; परन्तु जब ऐसा योग्य पूर्ण ज्ञान-वैराग्ययुत सद्‌गुरु मिल जाये।

448. प्रश्न—एक वृक्ष में सभी फूल-फल एक ही प्रकार के होते हैं, फिर एक ही माता-पिता के सब बच्चे एक ही गुण-कर्म के क्यों नहीं?

उत्तर—वृक्ष केवल जड़ है, इसलिए एकरूपता है; परन्तु मनुष्य चेतन है। यह अविनाशी चेतन अपने-अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न गुणों वाले होते हैं। चेतन जीवों में स्वतंत्र कर्म करने की क्षमता होने से उनके शरीर, बुद्धि, गुण आदि में भेद हो जाते हैं।

449. प्रश्न—वैरागी दुखी क्यों?

उत्तर—दुख दो प्रकार का होता है एक मानसिक तथा दूसरा शारीरिक। शारीरिक दुख ज्वरादि तो सबको हो जाते हैं; परन्तु चिंता, शोक, घृणा, ईर्ष्या-द्वेषादि रूप मानसिक दुख ज्ञानी पुरुष को नहीं होता और इस प्रकार दुख जिसको हो वह वैरागी नहीं।

450. प्रश्न—अज्ञानसुषुप्ति और ज्ञानसुषुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—प्रकरण भेद से शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। वैसे देह-गेहादि पंचविषयों में आसक्त होकर कल्याण-साधना से दूर रहना अज्ञानसुषुप्ति है और शास्त्रीय तथा बौद्धिक ज्ञान में उलझकर सत्यविवेक एवं सत्यरहनी से दूर रहना ज्ञानसुषुप्ति है।

451. प्रश्न—स्मरण तथा संस्कार में क्या अन्तर है?

उत्तर—मन तथा इन्द्रियों के प्रत्यक्ष व्यवहार का अन्त:करण पर पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब ही संस्कार है और उनमें से कुछ का सामने आ जाना (ख्याल हो जाना) स्मरण है।

452. प्रश्न—आज का युवा वर्ग अध्यात्म से दूर क्यों भागता है?

उत्तर—उसे वह विषय पढ़ाया नहीं जाता, अत: अज्ञान के कारण भागता है। फिर सबके लिए ऐसा नहीं है, कितने युवक अध्यात्म मार्ग में अग्रसर हैं।

453. प्रश्न—समाज में साधुओं से इतनी घृणा क्यों होती जा रही है?

उत्तर—मूढ़ मानव में घृणा, द्वेष, मोह आदि के अलावा है ही क्या! समझदार किसी से घृणा नहीं करता है, सब से शिक्षा लेता है।

वैसे साधुतारहित केवल साधु-वेष धारण करने वालों को देखकर लोगों में अश्रद्धा हो, तो वह स्वाभाविक है। सच्चे साधु भी हैं, उनकी संगत करनी चाहिए।

454. प्रश्न—अधिक जप करने का क्या फल है?

उत्तर—आज तक जप किये, अब सत्संग तथा स्वाध्याय द्वारा जड़-चेतन, सत्य-असत्य आदि के निर्णयी बनिये। जीवन को विचार एवं विवेक प्रधान बनाइये। क्षमा, दया, सन्तोष, शील, सत्य आदि का निरन्तर स्मरण ही सच्चा जप है, जिसका फल अमोघ शांति है।

455. प्रश्न—धन, पुत्रादि प्रारब्ध से मिलते हैं कि पुरुषार्थ से?

उत्तर—प्रारब्ध में पुत्र का मिलना न हो, तो नहीं मिल सकता। परन्तु धनादि पुरुषार्थ से मिलता है। प्रारब्ध की बलिष्ठता होने से धन की वृद्धि होना स्वाभाविक है, परन्तु पुरुषार्थ निरर्थक नहीं जा सकता।

456. प्रश्न—कुछ कबीरपंथी लोग यादव या निम्न जाति के हाथ का पानी यह जानकर नहीं पीते कि वे मांस-शराब आदि का सेवन करते हैं, परन्तु उनके हाथ का दूध पी लेते हैं, क्या यह उचित है?

उत्तर—आपके पास कबीरपंथी हैं इसलिए आपकी दृष्टि उन पर गयी। गैर कबीरपंथी भी ऐसा करते हैं जो शाकाहारी एवं सदाचारी हैं। स्वच्छ होते हुए नीच जाति मानकर किसी के हाथ का पानी न पीना न्याय नहीं है। जिसका आचरण ऊंचा है, वह ऊंचा है; जाति-पांति मिथ्या है। अब कोई मांसाहारी के हाथ का पानी नहीं पीता, तो वह अपने आचार की दृष्टि से ठीक करता है। दूध भी उनके हाथ का न ले तो ठीक ही है। परन्तु आचार का भी नियम सीमित होता है। जितना सहज चलाना सम्भव है, उतना चलाया जा सकता है। फिर पानी हो या दूध मांसाहारी-शराबी उनमें मांस-शराब तो मिला नहीं देता है। जितने नियम में चलकर जिनका मन स्वच्छ लगता है, उतना वे करते हैं या जितना जो चला पाते हैं उतना चलाते हैं। आखिर नियम भी तो अपूर्ण होते हैं और समय-समय पर बदलते रहते हैं।

457. प्रश्न—पानी को छानने पर उसमें से कचड़ा आदि तो निकल जाते हैं, पर जल-प्राणी उसमें जन्मते-मरते तथा मल करते हैं, तो उसे कैसे छाना जाये?

उत्तर—पानी पीया ही न जाये, यह तो सम्भव नहीं। यह प्रश्न हो सकता है कि जब जल-प्राणी के मल-मूत्र पानी में रहेंगे ही, तब कचड़ा भी क्यों छाना जाये! मेरे अपने विचार से कचड़ा जो छाना जा सकता है, छान लें, जो छाना ही नहीं जा सकता उसके लिए मजबूरी है। पानी में जल-प्राणी के मल-मूत्र रहेंगे ही यह जानकर मनुष्य ऐसा न करे कि वह अपने मल-मूत्र जान-बूझकर पानी में मिलाकर पीने लगे। उसे चाहिए जितना सम्भव हो पानी को स्वच्छ रखे, उसे छानकर पीये।

458. प्रश्न—नलों में चाम के वायसर लगे रहते हैं, उनका पानी पीयें या नहीं?

उत्तर—जिनसे बन सके न पीयें। नल में रबर का वायसर लगाकर पीयें। फिर अंतत: मनुष्य शक्ति के भीतर जितनी स्वच्छता कर सकता है, उतनी करे। मनुष्य जितने क्षेत्र में अपना आचार चला पाता है, चलाता है, जहां नहीं चला पाता, वहां वह मजबूरन बरतता है, दूसरा चारा नहीं। प्रकारान्तर से यह बात सब पर लागू है।

हवा में गंदगी भी रहती है जो शरीर में लगती है, परन्तु जानबूझकर कोई गंदगी नहीं लगाता। गंदी गली का कचड़ा हवा के साथ उड़कर अंगों में पड़ जाता है, परन्तु कोई समझदार गंदी गलियों में नहीं लोटता। हांकते हुए भी कभी-कभी मक्खी भोजन पर बैठ जाती है, परन्तु जान-बूझकर कोई सदाचारी अपने साथ बैठाकर अपनी थाली में सूअर को नहीं खिलाता और सूअर से मक्खी कम गंदी नहीं। सूक्ष्म विचार करने पर संसार की समस्त वस्तुएं अशुद्ध हैं और उनसे बचा नहीं जा सकता। अतएव शक्ति चले तक गंदगी का त्याग करते हुए सदाचार का पालन करें। कबीरदेव कहते हैं ''खाने-पीने की वस्तु, यहां तक शरीर के जन्म का कारण ही अशुद्ध और छूत वाला है। छूत से वही मुक्त है जो विषयासक्ति रूपी माया से रहित है।''

छूतिहिं जेंवन छूतिहिं अँचवन, छूतिहिं जगत उपाया।
कहहिं कबीर ते छूति विवर्जित, जाके संग न माया॥

(बीजक, शब्द 41)

459. प्रश्न—कबीरपन्थ में बच्चों को बचपन में कंठी धारण करा देते हैं, क्या यह उचित है?

उत्तर—उचित है, इससे उन पर भक्ति-भावना के ही संस्कार पड़ेंगे। हां, उन्हें समझदार होने पर अपने बोध के अनुसार किसी विवेकी गुरु से विधिवत दीक्षा लेनी चाहिए। असली गुरुदीक्षा तो वही है जो समझ-बूझकर ग्रहण की जाती है।

460. प्रश्न—जीव को मुक्ति मिलने का क्या प्रमाण है?

उत्तर—जीव सारे जड़ दृश्यों से सर्वथा पृथक है। सारे संसार का, यहां तक शरीर का सम्बन्ध स्मरण मात्र है। जब ख्याल भूल जाता है तब पास की वस्तु भी खो जाती है। हम नित्य सुषुप्ति अवस्था में संसार तथा शरीर को सर्वथा भूले रहते हैं। दुख किसी को प्रिय नहीं और बाहरी वस्तुओं से जीव को दुख मिलता है। जो अनुकूल प्राणी-पदार्थ हैं उनमें भी हमें शांति नहीं मिलती। क्योंकि संसार की चाहे जितनी अनुकूलता हो, प्रतिकूलता में बदलती है, स्मरणों का कारण बनती है और स्मरणरहित होकर ही शांति मिल सकती है। संसार में जितना भी